प्रकाशक :

देवेन्द्रराज मेहता

सचिव, राजस्थान प्राकृत भारती संस्था

जयपुर.

◆

प्रथम संस्करण : 1983

●

मूल्य : 12.00 रु.

●

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

◆

प्राप्ति-स्थान :

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान

3826, यति श्यामलालजी का उपाश्रय—

मोतीसिंह भोमियों का रास्ता

जयपुर–302003 (राजस्थान)

◆

फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स

जौहरी बाजार, जयपुर-302 003.

Ācārānga Cayanikā/Philosophy.

Kamal Chand Sogani/Udaipur/1983.

प्रकाशकीय

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान के 23वें पुष्प के रूप में 'आचारांग-चयनिका' पाठकों के कर-कमलों में समर्पित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्राकृत भाषा में रचित आगम साहित्य विशाल है। भारतीय जन-जीवन और संस्कृति के प्रवाह को समझने के लिए इसका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा और समता के आधार पर व्यक्ति और समाज के उत्थान के लिए इसका मार्ग-दर्शन अनूठा है। ऐसा साहित्य सर्वसाधारण के लिए सुलभ हो सके, इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही दर्शन के विद्वान् डॉ० कमलचन्द सोगाणी ने आगमों की चयनिकाएँ तैयार की हैं। इन चयनिकाओं में से सर्व प्रथम 'आचारांग-चयनिका' प्रकाशित की जा रही है। इसमें आचारांग से चयनित सूत्र, उनका मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद और उनका व्याकरणिक-विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस तरह पाठकों को विभिन्न प्रकार से इसका लाभ मिल सकेगा। शीघ्र ही उत्तराध्ययन-चयनिका और दशवैकालिक-चयनिका प्राकृत भारती से प्रकाशित होगी। सम्भवतया आगम-चयनिकाओं का अध्ययन वृहदाकार आगमों के अध्ययन के प्रति रुचि को जागृत कर सकेगा। प्राकृत भारती संस्थान का विश्वास है कि आगमों के अध्ययन को सुलभ बनाने से व्यक्ति में सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो सकेगी और समाज में एक नयी चेतना का उदय हो सकेगा।

संस्थान के संयुक्त सचिव एवं जैन विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् महोपाध्याय श्री विनयसागरजी के आभारी हैं, जिनके सतत प्रयत्न से यह पुस्तक शोभन रूप में प्रकाशित हो रही है।

पुस्तक की सुन्दर छपाई के लिए संस्थान फ्रैण्ड्स प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, जयपुर के प्रति धन्यवाद ज्ञापन करता है।

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव

राजरूप टांक
अध्यक्ष

प्राक्कथन

गणिपिटक को ही द्वादशांगी कहते हैं। द्वादशांगी में बारहवाँ अंग दृष्टिवाद विलुप्त/विच्छिन्न होने से अंग-प्रविष्ट आगमों में एकादशांग ही माने गये हैं। ग्यारह अंगों में भी आचारांग का सर्वप्रथम स्थान है। आचारांग सूत्र आचार प्रधान आगम होते हुए भी गूढ़ आत्म-दर्शनात्मक और अध्यात्म प्रधान भी है।

श्रमण जीवन की मूल भित्ति भी आचार ही है, श्रमण जीवन की साधना भी आचार पर ही निर्भर है और संघीय व्यवस्था भी आचार पर ही अवलम्बित है। यही कारण है कि आचार की अतिशय महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आचारांग के चूर्णिकार[1] और वृत्तिकार[2] लिखते हैं कि "अतीत, वर्तमान और भविष्य में जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, विद्यमान हैं और होंगे, उन सभी ने सर्वप्रथम आचार का ही उपदेश दिया है, देते हैं और देंगे।"

आचारांग निर्युक्तिकार[3] आचार को ही सिद्धिसोपान/अव्याबाध सुख

---

1 चूर्णि पृष्ठ 3,
2 शीलांक टीका पृष्ठ 6,
3 गाथा 16-17,

की भूमि का मानते हुए प्रश्नोत्तरात्मक शैली में कहते हैं कि, "अंग सूत्रों का सार आचार है, आचार का सार अनुयोगार्थ है, अनुयोगार्थ का सार प्ररूपणा है, प्ररूपणा का सार सम्यक् चारित्र है, सम्यक् चारित्र का सार निर्वाण है और निर्वाण का सार अव्याबाध सुख है।"

निर्युक्तिकार[4] के मतानुसार आचारांग के पर्यायवाची दश नाम प्राप्त होते हैं—1. आयार, 2. आचाल, 3. आगाल, 4. आगर, 5. आसास, 6. आयरिस, 7. अंग, 8. आइण्ण, 9. आजाइ और 10. आमोक्ख।

आचारांग सूत्र दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में अनेक उद्देशकों सहित 9 अध्ययन हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में चार चूलिकाओं सहित 16 अध्ययन हैं। रचना गद्य और पद्य में होते हुए भी गद्य बहुल है। भाषा शास्त्र की दृष्टि से प्रथम श्रुतस्कन्ध प्राचीनतम है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध कुछ परवर्तीकाल का है।

आचारांग सूत्र का आरम्भ ही आत्म-जिज्ञासा से होता है। इसमें आत्म-दृष्टि, अहिंसा, समता, वैराग्य, अप्रमाद, अनासक्ति, निस्पृहता, निस्संगता, सहिष्णुता, अचेलत्व, ध्यानसिद्धि, उत्कृष्ट संयम-साधना, तप की आराधना, मानसिक पवित्रता और आत्मशुद्धि-मूलक पवित्र जीवन का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। इसके साथ ही इसमें श्रमण भगवान् महावीर के छद्मस्थ काल की उच्चतम जीवन/संयम साधना के वे विलुप्त अंश भी प्राप्त होते हैं जो आगम साहित्य में अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं है। इस ग्रन्थ के

---

4 गाथा 290

प्रतिपाद्य विषयों का अवलोकन करने पर यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि यदि साधनामय तपोपूत जीवन जीने की कला का शिक्षण प्राप्त करना हो तो साधक इस आगम ग्रन्थ का अध्ययन अवश्यमेव करे।

आचारांग सूत्र प्राकृत भाषा में होने के साथ-साथ दुरूह एवं विशाल भी है। इसका संस्कृत और हिन्दी आदि भाषात्मक व्याख्या साहित्य भी बृहदाकार होने से सामान्य पाठकों/जिज्ञासुओं के लिये इस आगम ग्रन्थ का अध्ययन और रहस्य को समझ पाना अत्यन्त दुरूह नहीं होने पर भी कठिन तो अवश्य ही है।

प्राकृत भाषा के सामान्य अभ्यासी अथवा अनभिज्ञ पाठक भी आचारांग सूत्र की महत्ता, इसमें प्रतिपादित जीवन के शाश्वत मूल्यों एवं आत्म-विकासोन्मुखी प्रमुख-प्रमुख विशेषताओं को हृदयंगम कर सकें, जीवन-साधना के पवित्र रहस्य तथा इसके प्रत्येक पहलुओं को समझ सकें, इसी भावना के वशीभूत होकर डॉ० कमलचन्दजी सोगाणी ने इस चयनिका का संकलन/निर्माण किया है।

प्रस्तुत चयनिका में आचारांग सूत्र के विशाल कलेवर में से वैशिष्ट्य पूर्ण केवल एक सौ तेरह सूत्रों का चयन है और साथ ही प्रत्येक सूत्र का व्याकरण की दृष्टि से शाब्दिक हिन्दी अनुवाद भी। व्याकरणिक विश्लेषण में लेखक ने प्राकृत व्याकरण को दृष्टिपथ में रखते हुए प्रत्येक शब्द का मूल रूप, अर्थ और विभक्ति आदि का जिस पद्धति से आलेखन/परीक्षण किया है वह उनकी स्वयं अनोखी शैली का परिचायक है। इस शैली से अध्ययन करने पर सामान्य

पाठक/जिज्ञासु भी प्राकृत भाषा का सामान्य स्वरूप और प्रतिपाद्य विषय का हार्द सहज भाव से समझ सकता है।

इस प्रशस्य और सफल प्रयास के लिये मेरे सन्मित्र डॉ० सोगाणी साधुवादार्ह हैं। मेरी मान्यता है कि इनकी यह शैली अनुवाद विधा में एक नया आयाम अवश्य ही स्थापित करेगी।

आषाढ़ी पूर्णिमा, सं० 2040
जयपुर

म. विनयसागर

अहिंसा-समता

के

माध्यम

से

जन-जन को जगाने वाले

आचार्यों

को

सादर समर्पित

प्रस्तावना

यह सर्व विदित है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रंगों को देखता है, ध्वनियों को सुनता है, स्पर्शों का अनुभव करता है, स्वादों को चखता है तथा गन्धों को ग्रहण करता है। इस तरह उसकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं। वह जानता है कि उसके चारों ओर पहाड़ हैं, तालाब हैं, वृक्ष हैं, मकान हैं, मिट्टी के टीले हैं, पत्थर हैं इत्यादि। आकाश में वह सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखता है। ये सभी वस्तुएँ उसके तथ्यात्मक जगत का निर्माण करती हैं। इस प्रकार वह विविध वस्तुओं के बीच अपने को पाता है। उन्हीं वस्तुओं से वह भोजन, पानी, हवा आदि प्राप्त कर अपना जीवन चलाता है। उन वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने के कारण वह वस्तु-जगत का एक प्रकार से सम्राट बन जाता है। अपनी विविध इच्छाओं की तृप्ति भी बहुत सीमा तक वह वस्तु-जगत से ही कर लेता है। यह मनुष्य की चेतना का एक आयाम है।

धीरे-धीरे मनुष्य की चेतना एक नया मोड़ लेती है। मनुष्य समझने लगता है कि इस जगत में उसके जैसे दूसरे मनुष्य भी हैं, जो उसकी तरह हँसते हैं, रोते हैं, सुखी-दुःखी होते हैं। वे उसकी तरह विचारों, भावनाओं और क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। चूँकि मनुष्य अपने चारों ओर की वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने

का अभ्यस्त होता है, अतः वह अपनी इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर मनुष्यों का उपयोग भी अपनी आकांक्षाओं और आशाओं की पूर्ति के लिए ही करता है। वह चाहने लगता है कि सभी उसी के लिए जीएँ। उसकी निगाह में दूसरे मनुष्य वस्तुओं से अधिक कुछ नहीं होते हैं। किन्तु उसकी यह प्रवृत्ति बहुत समय तक चल नहीं पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दूसरे मनुष्य भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति में रत होते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें शक्ति-वृद्धि की महत्वाकांक्षा का उदय होता है। जो मनुष्य शक्ति-वृद्धि में सफल होता है, वह दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में समर्थ हो जाता है। पर मनुष्य की यह स्थिति घोर तनाव की स्थिति होती है। अधिकांश मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस तनाव की स्थिति में से गुजर चुके होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह तनाव लम्बे समय तक मनुष्य के लिए असहनीय होता है। इस असहनीय तनाव के साथ-साथ मनुष्य कभी न कभी दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में असफल हो जाता है। ये क्षण उसके पुनर्विचार के क्षण होते हैं। वह गहराई से मनुष्य-प्रकृति के विषय में सोचना प्रारम्भ करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें सहसा प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्मान-भाव का उदय होता है। वह अब मनुष्य-मनुष्य की समानता और उसकी स्वतन्त्रता का पोषक बनने लगता है। वह अब उनका अपने लिए उपयोग करने के बजाय अपना उपयोग उनके लिए करना चाहता है। वह उनका शोषण करने के स्थान पर उनके विकास के लिए चिंतन प्रारम्भ करता है। वह स्व-उदय के बजाय सर्वोदय का इच्छुक हो जाता है। वह सेवा लेने के स्थान पर सेवा करने को महत्त्व देने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसे तनाव-मुक्त कर देती है और वह एक प्रकार से विशिष्ट व्यक्ति बन जाता है। उसमें एक असाधारण अनुभूति का जन्म होता है। इस अनुभूति को ही हम मूल्यों की अनुभूति कहते हैं। वह अब

वस्तु-जगत में जीते हुए भी मूल्य-जगत में जीने लगता है। उसका मूल्य-जगत में जीना धीरे-धीरे गहराई की ओर बढ़ता जाता है। वह अब मानव-मूल्यों को खोज में संलग्न हो जाता है। वह मूल्यों के लिए ही जीता है और समाज में उनकी अनुभूति वढ़े इसके लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। यह मनुष्य की चेतना का एक दूसरा आयाम है।

आचारांग में मुख्य रूप से मूल्यात्मक चेतना की सवल अभिव्यक्ति हुई है। इसका प्रमुख उद्देश्य अहिंसात्मक समाज का निर्माण करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करना है, जिससे समाज में समता के आधार पर सुख, शान्ति और समृद्धि के बीज अंकुरित हो सकें। अज्ञान के कारण मनुष्य हिंसात्मक प्रवृत्तियों के द्वारा श्रेष्ठ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। वह हिंसा के दूरगामी कुप्रभावों को, जो उसके और समाज के जीवन को विकृत करते हैं, नहीं देख पाता है। किसी भी कारण से की गई हिंसा आचारांग को मान्य नहीं है। हिंसा के साथ ताल-मेल आचारांग की दृष्टि में हेय है। वह व्यावहारिक जीवन को विवशता हो सकती है, पर वह उपादेय नहीं हो सकती। हिंसा का अर्थ केवल किसी को प्राण-विहीन करना ही नहीं है, किन्तु किसी भी प्राणी की स्वतन्त्रता का किसी भी रूप में हनन हिंसा के अर्थ में ही सिमट जाता है। इसीलिए आचारांग में कहा है कि किसी भी प्राणी को मत मारो, उस पर शासन मत करो, उसको गुलाम मत बनाओ, उसको मत सताओ और उसे अशान्त मत करो। धर्म तो प्राणियों के प्रति समता-भाव में ही होता है। मेरा विश्वास है कि हिंसा का इतना सूक्ष्म विवेचन विश्व-साहित्य में कठिनाई से ही मिलेगा। समता की भूमिका पर हिंसा-अहिंसा के इतने विश्लेषण एवं विवेचन के कारण ही आचारांग को विश्व-साहित्य में सर्वोपरि स्थान दिया जा सकता है। आचारांग की

घोषणा है कि प्राणियों के विकास में अन्तर होने के कारण किसी भी प्रकार के प्राणी के अस्तित्व को नकारना अपने ही अस्तित्व को नकारना है। प्राणी विविध प्रकार के होते हैं : एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इन सभी प्राणियों को जीवन प्रिय होता है, इन सभी के लिए दुःख अप्रिय होता है। आचारांग ने हिंसा-अहिंसा का विवेचन प्राणियों के सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर प्रस्तुत किया है, जो मेरी दृष्टि में एक विलक्षण प्रतिपादन है। ऐसा लगता है कि आचारांग मनुष्यों की संवेदनशीलता को गहरी करना चाहता है, ज़िससे मनुष्य एक ऐसे समाज का निर्माण कर सके जिसमें शोषण, अराजकता, नियम-हीनता, अशांति और आपसी संवंधों में तनाव विद्यमान न रहे। मनुष्य अपने दुःखों को तो अनुभव कर ही लेता है, पर दूसरों के दुःखों के प्रति वह संवेदनशील प्रायः नहीं हो पाता है। यही हिंसा का मूल है। जब दूसरों के दुःख हमें अपने जैसे लगने लगें, जब दूसरों की चीख हमें अपनी चीख के समान मालूम हो, तो ही अहिंसा का प्रारम्भ हो सकता है। मनुष्य को अपने सार्वकालिक सूक्ष्म अस्तित्व में सन्देह न रहे, इस बात को समझाने के लिए पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त से ही ग्रंथ का आरम्भ किया गया है। अपने सूक्ष्म अस्तित्व में सन्देह नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यों को ही सन्देहात्मक बना देता है, जिससे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की आधारशिला ही गड़बड़ा जायगी। इसीलिए आचारांग ने सर्वप्रथम स्व-अस्तित्व एवं प्राणियों के अस्तित्व के साथ क्रियाओं एवं उनसे उत्पन्न प्रभावों में विश्वास उत्पन्न किया है। ये सभी व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को वास्तविकता प्रदान करते हैं और इनके आधार पर ही मूल्यों की चर्चा सम्भव बन पाती है।

आचारांग में 323 सूत्र हैं, जो नौ* अध्ययनों में विभक्त हैं। इन विभिन्न अध्ययनों में जीवन-विकास के सूत्र बिखरे पड़े हैं। यहां मानववाद पूर्णरूप से प्रतिष्ठित हैं। आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रेरणाएँ यहाँ उपलब्ध हैं। मूर्च्छा, प्रमाद, और ममत्व जीवन को दुःखी करने वाले कहे गए हैं। वस्तु-त्याग के स्थान पर ममत्व-त्याग को आचारांग में महत्त्व दिया गया है। वस्तु-त्याग ममत्व-त्याग से प्रतिफलित होना चाहिये। आध्यात्मिक-जागृति मूल्यवान कही गई है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य मान-अपमान, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वों की निरर्थकता को समझ सकता है। अहिंसा, सत्य और समता के ग्रहण को प्रमुख स्थान दिया गया है। बुद्धि और तर्क जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हुए भी, आध्यात्मिक अनुभव इनकी पकड़ से बाहर प्रतिपादित हैं। साधनामय मरण की प्रेरणा सूत्रों में व्याप्त है। आचारांग में भगवान महावीर की साधना का ओजस्वी वर्णन किसी भी साधक के लिए मार्ग-दर्शक हो सकता है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि आचारांग की रचना-शैली और विषय की गम्भीरता को देखते हुए यह कहा गया है कि आचारांग उपलब्ध आगमों में सबसे प्राचीन है। "आचारांग आगम साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन है। उसमें वर्णित आचार मूलभूत है और वह महावीर युग के अधिक सन्निकट है।"**

आचारांग के इन 323 सूत्रों में से ही हमने 113 सूत्रों का चयन 'आचारांग चयनिका' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। इस चयन का उद्देश्य पाठकों के समक्ष आचारांग के उन कुछ सूत्रों को प्रस्तुत करना है, जो मनुष्यों में अहिंसा, सत्य, समता और जागृति

---

* वर्तमान में 8 अध्ययन ही प्राप्त हैं, 7वां अध्ययन अनुपलब्ध है।

** जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृष्ठ, 60.

(अनासक्ति) की मूल्यात्मक भावना को दृढ़ कर सकें, जिससे उनमें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की चेतना सघन बन सके। अब हम इस चयनिका की विषय-वस्तु की चर्चा करेंगे :

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म :

मनुष्य समय-समय पर मनुष्यों को मरते हुए देखता है। कभी न कभी उसके मन में स्व-अस्तित्व की निरन्तरता का प्रश्न उपस्थित हो ही जाता है। जीवन के गम्भीर क्षणों में यह प्रश्न उसके मानस-पटल पर गहराई से अंकित होता है। अतः स्व-अस्तित्व का प्रश्न मनुष्य का मूलभूत प्रश्न है। आचारांग ने सर्वप्रथम इसी प्रश्न से चिन्तन प्रारम्भ किया है। आचारांग का यह विश्वास प्रतीत होता है कि इस प्रश्न के समाधान के पश्चात् ही मनुष्य स्थिर मन से अपने विकास की बातों की ओर ध्यान दे सकता है। यदि स्व-अस्तित्व ही त्रिकालिक नहीं है तो मूल्यात्मक विकास का क्या प्रयोजन ? स्व-अस्तित्व में आस्था उत्पन्न करने के लिए आचारांग, पूर्वजन्म-पुनर्जन्म की चर्चा से शुरू होता है। आचारांग का कहना है कि यहाँ कुछ मनुष्यों में यह होश नहीं होता है कि वे अमुक दिशा से इस लोक में आएँ है (1)। वे यह भी नहीं जानते हैं कि वे आगामी जन्म में किस अवस्था को प्राप्त करेंगे (1) ? यहाँ प्रश्न यह है कि क्या स्व-अस्तित्व की निरन्तरता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ? कुछ लोग तो पूर्वजन्म में स्व-अस्तित्व का ज्ञान अपनी स्मृति के माध्यम से कर लेते हैं। कुछ दूसरे लोग अतीन्द्रिय ज्ञानियों के कथन से इसको जान पाते हैं तथा कुछ और लोग उन लोगों से जान लेते हैं जो अतीन्द्रिय ज्ञानियों के सम्पर्क में आए हैं (2)। इस तरह से पूर्वजन्म में स्व-अस्तित्व का ज्ञान स्वयं के देखने से अथवा अतीन्द्रिय ज्ञानियों के देखने से होता है। पूर्व जन्मों के ज्ञान से ही पुनर्जन्म के होने का विश्वास उत्पन्न हो सकता है। आचारांग ने पुनर्जन्म में

विश्वास को पूर्व जन्म के ज्ञान पर आश्रित किया है। ऐसा लगता है कि महावीर-युग में व्यक्ति को पूर्वजन्म की स्मृति में उतारने की क्रिया वर्तमान थी और यह आध्यात्मिक उत्थान के प्रति जागृति का सबल माध्यम था। जन्मों-जन्मों में स्व-अस्तित्व के होने में विश्वास करने वाला ही आचारांग की दृष्टि में आत्मा को मानने वाला होता है। जन्मों-जन्मों पर विश्वास से देश-काल में तथा पुद्गलात्मक लोक में विश्वास उत्पन्न होता है। इसी से मन-वचन-काय की क्रियाओं और उनसे उत्पन्न प्रभावों को स्वीकार किया जाता है। आचारांग का कहना है कि जो मनुष्य पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को समझ लेता है वह ही व्यक्ति आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी कहा गया है (3)। इसी आधार पर समाज में नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यों का भवन खड़ा किया जा सकता है और सामाजिक उत्थान को वास्तविक बनाया जा सकता है।

क्रियाओं की विपरीतता :

आचारांग इस बात पर खेद व्यक्त करता है कि मनुष्य के द्वारा मन-वचन-काय की क्रिया की सही दिशा समझी हुई नहीं है। इसीलिए उनसे उत्पन्न कुप्रभावों के कारण वह थका देने वाले एक जन्म से दूसरे जन्म में चलता जाता है और अनेक प्रकार की योनियों में सुखों-दु:खों का अनुभव करता रहता है (4)। मनुष्य की क्रियाओं के प्रयोजनों का विश्लेषण करते हुए आचारांग का कहना है कि मनुष्य के द्वारा मन-वचन-काय की क्रियाएँ जिन प्रयोजनों से की जाती हैं वे हैं : (i) वर्तमान जीवन की रक्षा के प्रयोजन से, (ii) प्रशंसा, आदर तथा पूजा पाने के प्रयोजन से, (iii) भावी-जन्म की उधेड़-बुन के कारण, वर्तमान में मरण-भय के कारण तथा परम शान्ति प्राप्त करने तथा दु:खों को दूर करने के प्रयोजन से (5, 6)। जिसने क्रियाओं के इतने शुरुआत जान लिए हैं उसने ही

क्रियाओं का ज्ञान प्राप्त किया है (7)। किन्तु दुःख की बात यह है कि मनुष्य इन विभिन्न प्रयोजनों की प्राप्ति के लिए विभिन्न जीवों की हिंसा करता है, उनकी हिंसा करवाता है तथा उनकी हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है (8 से 15)। आचारांग का कहना है कि क्रियाओं की यह विपरीतता जो हिंसा में प्रकट होती है मनुष्य के अहित के लिए होती है, वह उसके अध्यात्महीन बने रहने का कारण होती है (8 से 15) यह हिंसा-कार्य निश्चय ही बन्धन में डालने वाला है, मूर्च्छा में पटकने वाला है, और अमंगल में धकेलने वाला है (16)। अतः क्रियाओं की विपरीतता का माप-दण्ड है, हिंसा। जो क्रिया हिंसात्मक है वह विपरीत है। यहां हिंसा को व्यापक अर्थ में समझा जाना चाहिए। किसी प्राणी को मारना, उसको गुलाम बनाना, उस पर शासन करना आदि सभी क्रियाएँ हिंसात्मक हैं (64)। जब मन-वचन-काय की क्रियाओं की विपरीतता समाप्त होती हैं, तब मनुष्य न तो विभिन्न जीवों की हिंसा करता है, न हिंसा करवाता है और न ही हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है (17)। उसके जीवन में अहिंसा प्रकट हो जाती है अर्थात् न वह प्राणियों को मारता है, न उन पर शासन करता है, न उनको गुलाम बनाता है, न उनको सताता है और न ही उन्हें कभी किसी प्रकार से अशान्त करता है (64)। अतः कहा जा सकता है कि यदि क्रियाओं की विपरीतता का मापदण्ड हिंसा है तो उनकी उचितता का मापदण्ड अहिंसा होगा। जिसने भी हिंसात्मक क्रियाओं को दृष्टाभाव से जान लिया उसके हिंसा समझ में आ जाती है और धीरे-धीरे वह उससे छूट जाती है (17)।

क्रियाओं का प्रभाव :

मन-वचन-काय की क्रियाओं की विपरीतता और उनकी उचितता का प्रभाव दूसरों पर पड़ता भी है और नहीं भी पड़ता है,

किन्तु अपने आप पर तो प्रभाव पड़ ही जाता है। वे क्रियाएँ मनुष्य के व्यक्तित्व का अंग बन जाती हैं। इसे ही कर्म-बन्धन कहते हैं। यह कर्म-बन्धन ही व्यक्ति के सुखात्मक और दुःखात्मक जीवन का आधार होता है। इस विराट विश्व में हिंसा व्यक्तित्व को विकृत कर देती है और अपने तथा दूसरों के दुःखात्मक जीवन का कारण बनती है और अहिंसा व्यक्तित्व को विकसित करती है और अपने तथा दूसरों के सुखात्मक जीवन का कारण बनती है। हिंसा विराट प्रकृति के विपरीत है। अतः वह हमारी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी होने से रोकती है और ऊर्जा को ध्वंस में लगा देती है, किन्तु अहिंसा विराट प्रकृति के अनुकूल होने से हमारी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए मार्ग प्रशस्त करती है और ऊर्जा को रचना में लगा देती है। हिंसात्मक क्रियाएँ मनुष्य की चेतना को सिकोड़ देती हैं और उसको ह्रास की ओर ले जाती हैं, अहिंसात्मक क्रियाएँ मनुष्य की चेतना को विकास की ओर ले जाती हैं। इस प्रकार इन क्रियाओं का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। अतः आचारांग ने कहा है कि जो मनुष्य कर्म-बन्धन और कर्म से छुटकारे के विषय में खोज करता है वह शुद्ध-बुद्धि होता है (43)।

मूर्च्छित मनुष्य की दशा :

वास्तविक स्व-अस्तित्व का विस्मरण ही मूर्च्छा है। इसी विस्मरण के कारण मनुष्य व्यक्तिगत अवस्थाओं और सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न सुख-दुःख से एकीकरण करके सुखी-दुःखी होता रहता है। मूर्च्छित मनुष्य स्व-अस्तित्व (आत्मा) के प्रति जागरूक नहीं होता है, वह अशांति से पीड़ित होता है, समता-भाव से दरिद्र होता है, उसे अहिंसा पर आधारित मूल्यों का ज्ञान देना कठिन होता है तथा वह अध्यात्म को समझने वाला नहीं होता है (18)। मूर्च्छित मनुष्य इन्द्रिय-विषयों में ही ठहरा रहता है (22)।

वह आसक्ति-युक्त होता है और कुटिल आचरण में ही रत रहता है (22)। इस तरह से वह अर्हंत् (जीवन-मुक्त) की आज्ञा के विपरीत चलने वाला होता है (22, 80)। स्व-अस्तित्व के प्रति जागरूक होना ही अर्हंत् की आज्ञा में रहना है। इस जगत में यह विचित्रता है कि सुख देने वाली वस्तु दुःख देने वाली बन जाती है और दुःख देने वाली वस्तु सुख देने वाली बन जाती है। मूर्च्छित (आसक्ति-युक्त) मनुष्य इस बात को देख नहीं पाता है (35)। इसलिए वह सदैव वस्तुओं के प्रति आसक्त बना रहता है। यही उसका अज्ञान है (38)। विषयों में लोलुपता के कारण वह संसार में अपने लिए वैर की वृद्धि करता रहता है (39) और बार-बार जन्म-धारण करता रहता है (46)। अतः कहा जा सकता है कि मूर्च्छित (अज्ञानी) मनुष्य सदा सोया हुआ अर्थात् सत्मार्ग को भूला हुआ होता है (44)। जो मनुष्य मूर्च्छारूपी अंधकार में रहता है वह एक प्रकार से अंधा ही है। वह इच्छाओं में आसक्त बना रहता है और उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह प्राणियों की हिंसा में संलग्न होता है (82)। वह प्राणियों को मारने वाला, छेदने वाला, उनकी हानि करने वाला तथा उनको हैरान करने वाला होता है (27)। इच्छाओं के तृप्त न होने पर वह शोक करता है, क्रोध करता है, दूसरों को सताता है और उनको नुकसान पहुंचाता है (37)। यहाँ यह समझना चाहिए कि सतत हिंसा में संलग्न रहने वाला व्यक्ति भयभीत व्यक्ति होता है। आचारांग ने ठीक ही कहा है कि प्रमादी (मूर्च्छित) व्यक्ति को सब ओर से भय होता है (62)। वह सदैव मानसिक तनावों से भरा रहता है। चूँकि उसके अनेक चित्त होते हैं, इसलिए उसका अपने लिए शान्ति (तनाव-मुक्ति) का दावा करना ऐसे ही है जैसे कोई चलनी को पानी से भरने का दावा करे (53)। मूर्च्छित मनुष्य संसाररूपी प्रवाह में तैरने के लिए बिल्कुल समर्थ नहीं होता है (33)। वह भोगों का अनुमोदन करने वाला होता है तथा

दु:खों के भँवर में ही फिरता रहता है (34)।

आध्यात्मिक प्रेरक तथा उनसे प्राप्त शिक्षा :

यह मूर्च्छित मनुष्यों का जगत है। ऐसा होते हुए भी यह जगत् मनुष्य को ऐसे अनुभव प्रदान करने के लिए सक्षम है, जिनके द्वारा वह अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। मनुष्य कितना ही मूर्च्छित क्यों न हो फिर भी बुढ़ापा, मृत्यु और धन-वैभव की अस्थिरता उसको एक बार जगत के रहस्य को समझने के लिए वाध्य कर ही देते हैं। यह सच है कि कुछ मनुष्यों के लिए यह जगत इन्द्रिय-तुष्टि का ही माध्यम वना रहता है (66), किन्तु कुछ मनुष्य ऐसे संवेदनशील होते हैं कि यह जगत उनकी मूर्च्छा को आखिर तोड़ ही देता है।

मनुष्य देखता है कि प्रति क्षण उसकी आयु क्षीण हो रही है। अपनी बीती हुई आयु को देखकर वह व्याकुल होता है और बुढ़ापे में उसका मन गड़वड़ा जाता है। जिनके साथ वह रहता है, वे ही आत्मीय-जन उसको बुरा-भला कहने लगते हैं और वह भी उनको बुरा-भला कहने लग जाता है। बुढ़ापे की अवस्था में वह मनोरंजन के लिए, क्रीड़ा के लिए तथा प्रेम के लिए नीरसता व्यक्त करता है (25)। अत: आचारांग का शिक्षण है कि ये आत्मीय-जन मनुष्य के सहारे के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं और वह भी उनके सहारे के लिए पर्याप्त नहीं होता है (25) इस प्रकार मनुष्य वुढ़ापे को समझकर आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करे तथा संयम के लिए प्रयत्नशील बने। और वर्तमान मनुष्य-जीवन के संयोग को देखकर आसक्ति-रहित वनने का प्रयास करे (26)। आचारांग का कथन है कि हे मनुष्यो ! आयु बीत रही है, यौवन भी बीत रहा है, अत: प्रमाद (आसक्ति) में मत फँसो (26)। और जब तक इन्द्रियों की शक्ति

क्षीण न हो, तब तक ही स्व-अस्तित्व के प्रति जागरूक होकर आध्यात्मिक विकास में लगो (28)।

आचारांग सर्व-अनुभूत तथ्य को दोहराता है कि मृत्यु के लिए किसी भी क्षण न आना नहीं है (32)। इसी बात को रखते हुए आचारांग फिर कहता है कि मनुष्य इस देह-संगम को देखे। यह देह-संगम छूटता अवश्य है। इसका तो स्वभाव ही नश्वर है। यह अध्रुव है, अनित्य है और अशाश्वत है (71)। आचारांग उनके प्रति आश्चर्य प्रकट करता है जो मृत्यु के द्वारा पकड़े हुए होने पर भी संग्रह में आसक्त होते हैं (66)। मृत्यु की अनिवार्यता हमारी आध्यात्मिक प्रेरणा का कारण बन सकती है। कुछ मनुष्य इससे प्रेरणा ग्रहण कर अनासक्ति की साधना में लग जाते हैं।

धन-वैभव में मनुष्य सबसे अधिक आसक्त होता है। चूँकि जीवन की सभी आवश्यकताएँ इसी से पूरी होती हैं, इसलिए मनुष्य इसका संग्रह करने के लिए सभी प्रकार के उचित-अनुचित कर्म में संलग्न हो जाता है। आचारांग आसक्त मनुष्य का ध्यान धन-वैभव के नाश की ओर आकर्षित करते हुए कहता है कि कभी चोर धन-वैभव का अपहरण कर लेते हैं, कभी राजा उसको छीन लेता है और कभी वह घर-दहन में जला दिया जाता है (33)। धन-वैभव का नाश कुछ मनुष्यों को आध्यात्मिक प्रेरणा देकर उनको आत्म-जागृति की स्थिति में लाने के लिए समर्थ हो सकता है।

इस तरह से जब मूर्च्छित मनुष्य को संसार की निस्सारता का भान होने लगता है (54), तो उसकी मूर्च्छा की सघनता धीरे-धीरे कम होती जाती है और वह अध्यात्म मार्ग की ओर चल पड़ता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि अध्यात्म में प्रगति किया हुआ व्यक्ति मिल जाए, तो भी मूर्च्छित मनुष्य जागृत स्थिति में छलाँग

लगा सकता है (77)। इस तरह से बुढ़ापा, मृत्यु, धन-वैभव का नाश, संसार की निस्सारता और जागृत मनुष्य के दर्शन—ये सभी मूर्च्छित मनुष्य को आध्यात्मिक प्रेरणा देकर उसमें स्व-अस्तित्व का बोध पैदा कर सकते हैं।

आन्तरिक रूपान्तरण और साधना के सूत्र :

आत्म-जागृति अथवा स्व-अस्तित्व के बोध के पश्चात् आचारांग मनुष्य को चारित्रात्मक आन्तरिक रूपान्तरण के महत्त्व को बतलाते हुए साधना के ऐसे सारभूत सूत्रों को बतलाता है जिससे उसकी साधना पूर्णता को प्राप्त हो सके। कहा है कि हे मनुष्य! तू ही तेरा मित्र है (59), तू अपने मन को रोक कर जी (60)। जो सुन्दर चित्तवाला है, वह व्याकुलता में नहीं फँसता है (61)। तू मानसिक विषमता (राग-द्वेष) के साथ ही युद्ध कर, तेरे लिए बाहरी व्यक्तियों से युद्ध करने से क्या लाभ (74)? बंध (अशांति) और मोक्ष (शान्ति) तेरे अपने मन में ही है (72)। धर्म न गाँव में होता है और न जंगल में, वह तो एक प्रकार का आन्तरिक रूपान्तरण है (80)। कहा गया है कि जो ममतावाली वस्तु-बुद्धि को छोड़ता है, वह ममतावाली वस्तु को छोड़ता है, जिसके लिए कोई ममतावाली वस्तु नहीं है, वह ही ऐसा ज्ञानी है, जिसके द्वारा अध्यात्म-पथ जाना गया है (40)।

आन्तरिक रूपान्तरण के महत्त्व को समझाने के बाद आचारांग ने हमें साधना की दिशाएँ बताई हैं। ये दिशाएँ ही साधना के सूत्र हैं। (i) अज्ञानी मनुष्य का बाह्य जगत से सम्पर्क उसमें आशाओं और इच्छाओं को जन्म दे देता है। मनुष्यों से वह अपनी आशाओं की पूर्ति चाहने लगता है और वस्तुओं की प्राप्ति के द्वारा वह इच्छाओं की तृप्ति चाहता है। इस तरह से मनुष्य आशाओं

और इच्छाओं का पिण्ड बना रहता है। ये ही उसके मानसिक तनाव, अशान्ति और दु:ख के कारण होते हैं (35)। इसलिए आचारांग का कथन है कि मनुष्य आशा और इच्छा को त्यागे (35)। (ii) जो व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होता है, वह बहिर्मुखी ही बना रहता है, जिसके फल-स्वरूप उसके कर्म-बन्धन नहीं हटते हैं और उसके विभाव-संयोग (राग-द्वेषात्मक भाव) नष्ट नहीं होते हैं (68)। अत: इन्द्रिय-विषय में अनासक्ति साधना के लिए आवश्यक है। यहीं से संयम की यात्रा प्रारम्भ होती है (46)। आचारांग का कथन है कि हे मनुष्य ! तू अनासक्त हो जा और अपने को नियन्त्रित कर (67)। जैसे अग्नि जीर्ण (सूखी) लकड़ियों को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार अनासक्त व्यक्ति राग-द्वेष को नष्ट कर देता है (67)। (iii) कषाएँ मनुष्य की स्वाभाविकता को नष्ट कर देती हैं। कषायों का राजा मोह है। जो एक मोह को नष्ट कर देता है, वह बहुत कषायों को नष्ट कर देता है (62)। अहंकार मृदु सामाजिक सम्बन्धों तथा आत्म-विकास का शत्रु है। कहा है कि उत्थान का अहंकार होने पर मनुष्य मूढ बन जाता है (75)। जो क्रोध आदि कषायों को तथा अहंकार को नष्ट करके चलता है, वह संसार-प्रवाह को नष्ट कर देता है (55)। (iv) मानव-समाज में न कोई नीच है और न कोई उच्च है (30)। सभी के साथ समतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। आचारांग के अनुसार समता में ही धर्म है (73)। (v) इस जगत में सब प्राणियों के लिए पीड़ा अशान्ति है, दु:ख-युक्त है (23)। सभी प्राणियों के लिए यहाँ सुख अनुकूल होते हैं, दु:ख प्रतिकूल होते हैं, वध अप्रिय होते हैं तथा जिन्दा रहने की अवस्थाएँ प्रिय होती हैं। सब प्राणियों के लिये जीवन प्रिय होता है (32)। अत: आचारांग का कथन है कि कोई भी प्राणी मारा नहीं जाना चाहिए, गुलाम नहीं बनाया जाना चाहिए, शासित नहीं किया जाना चाहिए, सताया नहीं जाना

चाहिए और अशान्त नहीं किया जाना चाहिये । यही धर्म शुद्ध है, नित्य है और शाश्वत है (64) । जो अहिंसा का पालन करता है, वह निर्भय हो जाता है (62) । हिंसा तीव्र से तीव्र होती है, किन्तु अहिंसा सरल होती है (62) । अतः हिंसा को मनुष्य त्यागे। प्राणियों में तात्विक समता स्थापित करते हुए आचारांग अहिंसा-भावना को दृढ़ करने के लिए कहता है कि जिसको तू मारे जाने योग्य मानता है; वह तू ही है; जिसको तू शासित किए जाने योग्य मानता है, वह तू ही है; जिसको तू सताए जाने योग्य मानता है, वह तू ही है; जिसको तू गुलाम बनाए जाने योग्य मानता है, वह तू ही है; जिसको तू अशान्त किए जाने योग्य मानता है, वह तू ही है; (78) । इसलिए ज्ञानी जीवों के प्रति दया का उपदेश दे और दया पालन की प्रशंसा करे (85) । (vi) आचारांग ने समता और अहिंसा की साधना के साथ सत्य की साधना को भी स्वीकार किया है । आचारांग का शिक्षण है कि हे मनुष्य ! तू सत्य का निर्णय कर, सत्य में धारणा कर और सत्य की आज्ञा में उपस्थित रह (52, 61) । (vii) संग्रह समाज में आर्थिक विषमता पैदा करता है । अतः आचारांग का कथन है कि मनुष्य अपने को परिग्रह से दूर रखे (36) । बहुत भी प्राप्त करके वह उसमें आसक्तियुक्त न बने (36) । (viii) आचारांग में समतादर्शी (अर्हत्) की आज्ञा-पालन को कर्त्तव्य कहा गया है (83) । कहा है कि कुछ लोग समतादर्शी की अनाज्ञा में भी तत्परता सहित होते हैं, कुछ लोग उसकी आज्ञा में भी आलसी होते हैं । ऐसा नहीं होना चाहिए (80) । यहाँ यह पूछा जा सकता है कि क्या मनुष्य के द्वारा आज्ञा-पालन किए जाने को महत्त्व देना उसकी स्वतन्त्रता का हनन नहीं है ? उत्तर में कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता का हनन तब होता है जब बुद्धि या तर्क से सुलझाई जाने वाली समस्याओं में भी आज्ञा-पालन को महत्त्व दिया जाए । किन्तु जहाँ बुद्धि की पहुँच न हो ऐसे

आध्यात्मिक रहस्यों के क्षेत्र में आत्मानुभवी (समतादर्शी) की आज्ञा का पालन ही साधक के लिए आत्म-विकास का माध्यम बन सकता है। संसार को जानने के लिये संशय अनिवार्य है (69), पर समाधि के लिये श्रद्धा अनिवार्य है (76)। इससे भी आगे चलें तो समाधि में पहुँचने के लिये समतादर्शी की आज्ञा में चलना आवश्यक है। संशय से विज्ञान जन्मता है, पर आत्मानुभवी की आज्ञा में चलने से ही समाधि-अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। अतः आचारांग ने अर्हत् की आज्ञा-पालन को कर्त्तव्य कह कर आध्यात्मिक रहस्यों को जानने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। (ix) मनुष्य लोक की प्रशंसा प्राप्त करना चाहता है, पर लोक असाधारण कार्यों की बड़ी मुश्किल से प्रशंसा करता है। उसकी पहुँच तो सामान्य कार्यों तक ही होती है। मूल्यों का साधक व्यक्ति असाधारण व्यक्ति होता है, अतः उसको अपने क्रान्तिकारी कार्यों के लिए प्रशंसा मिलना कठिन होता है। प्रशंसा का इच्छुक प्रशंसा न मिलने पर कार्यों को निश्चय ही छोड़ देगा। आचारांग ने मनुष्य की इस वृत्ति को समझकर कहा है कि मूल्यों का साधक लोक के द्वारा प्रशंसित होने के लिये इच्छा ही न करे (65)। वह तो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में मूल्यों की साधना से सदैव जुड़ा रहे।

साधना की पूर्णता :

साधना की पूर्णता होने पर हमें ऐसे महामानव के दर्शन होते हैं जो व्यक्ति के विकास और सामाजिक प्रगति के लिये प्रेरणा स्तम्भ होता है। आचारांग में ऐसे महामानव की विशेषताओं को बड़ी सूक्ष्मता से दर्शाया गया है। उसे द्रष्टा, अप्रमादी, जाग्रत, अनासक्त, वीर, कुशल आदि शब्दों से इंगित किया गया है। (i) द्रष्टा के लिए कोई उपदेश शेष नहीं है (34)। उसका कोई नाम नहीं है (63)। (ii) उसकी आँखें विस्तृत होती हैं अर्थात् वह सम्पूर्ण लोक

को देखने वाला होता है (38) । (iii) वह बन्धन और मुक्ति के विकल्पों से परे होता है (43) । वह शुभ-अशुभ, आदि दोनों अन्तों से नहीं कहा जा सकता है, इसलिए वह द्वन्द्वातीत होता है (49, 57) और लोक में किसी के द्वारा न छेदा जा सकता है, न भेदा जा सकता है, न जलाया जा सकता है तथा न मारा जा सकता है (57) । (iv) वह पूर्ण जागरुकता से चलने वाला होता है, अतः वह वीर हिंसा से संलग्न नहीं किया जाता है (42) । वह सदैव ही आध्यात्मिकता में जागता है (44)। (v) वह अनुपम प्रसन्नता में रहता है (41) । (vi) वह कर्मों से रहित होता है । उसके लिए सामान्य लोक प्रचलित आचरण आवश्यक नहीं होता है (48) । किन्तु उसका आचरण व्यक्ति व समाज के लिए मार्ग-दर्शक होता है । आचारांग का शिक्षण है कि जिस काम को जाग्रत व्यक्ति करता है, व्यक्ति व समाज उसको करे (43)। (vii) वह इन्द्रियों के विषयों को द्रष्टाभाव से जाना हुआ होता है, इसलिए वह आत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् और ब्रह्मवान् कहा जा सकता है (45)। (viii) जो लोक में परम तत्त्व को देखने वाला है, वह वहाँ विवेक से जीने वाला होता है, वह तनावमुक्त, समतावान्, कल्याण करने वाला, सदा जितेन्द्रिय, कार्यों के लिए उचित समय को चाहने वाला होता है तथा वह अनासक्तिपूर्वक लोक में गमन करता है (51) । (ix) उस महामानव के आत्मानुभव का वर्णन करने में सब शब्द लौट आते हैं, उसके विषय में कोई तर्क उपयोगी नहीं होता है, बुद्धि उसके विषय में कुछ भी पकड़ने वाली नहीं होती है (81) । आत्मानुभव की वह अवस्था आभामयी होती है । वह केवल ज्ञाता—द्रष्टा अवस्था होती है (81) ।

महावीर का साधनामय जीवन :

आचारांग ने महावीर के साधनामय जीवन पर प्रकाश डाला

है। यह जीवन किसी भी साधक के लिए प्रेरणा-स्रोत बन सकता है। महावीर सांसारिक परतन्त्रता को त्यागकर आत्मस्वातन्त्र्य के मार्ग पर चल पड़े (87)। उनकी साधना में ध्यान प्रमुख था। वे तीन घण्टे तक बिना पलक झपकाए आँखों को भीत पर लगाकर आन्तरिक रूप से ध्यान करते थे (88)। यदि महावीर गृहस्थों से युक्त स्थान में ठहरते थे तो भी वे उनसे मेल-जोल न बढ़ाकर ध्यान में ही लीन रहते थे। बाधा उपस्थित होने पर वे वहाँ से चले जाते थे। वे ध्यान की तो कभी भी उपेक्षा नहीं करते थे (89)। महावीर अपने समय को कथा-नाच-गान में, लाठी-युद्ध तथा मूठी-युद्ध को देखने में नहीं बिताते थे (90)। काम-कथा तथा कामातुर इशारों में वे हर्ष-शोक रहित होते थे (91)। वे प्राणियों की हिंसा से बचकर विहार करते थे (92)। वे खाने-पीने की मात्रा को समझने वाले थे और रसों में कभी लालायित नहीं होते थे (93)। महावीर कभी शरीर को नहीं खुजलाते थे और आँखों में कुछ गिरने पर आँखों को पोंछते भी नहीं थे (94)। वे कभी शून्य घरों में, कभी लुहार, कुम्हार आदि के कर्म-स्थानों में, कभी बगीचे में, कभी मसाण में और कभी पेड़ के नीचे ठहरते थे और संयम में सावधानी बरतते हुए वे ध्यान करते थे (96, 97, 98)। महावीर सोने में आनन्द नहीं लेते थे। नींद आती तो अपने को खड़ा करके जगा लेते थे। वे थोड़ा लेटते अवश्य थे पर नींद की इच्छा रखकर नहीं (99)। यदि रात में उनको नींद सताती, तो वे आवास से बाहर निकलकर इधर-उधर घूम कर फिर जागते हुए ध्यान में बैठ जाते थे (100)।

महावीर ने लौकिक तथा अलौकिक कष्टों को समतापूर्वक सहन किया (101, 102)। विभिन्न परिस्थितियों में हर्ष और शोक पर विजय प्राप्त करके वे समता-युक्त बने रहे (103)। लाढ़ देश के लोगों ने उनको बहुत हैरान किया। वहाँ कुछ लोग ऐसे थे जो

महावीर के पीछे कुत्तों को छोड़ देते थे। कुछ लोग उन पर विभिन्न प्रकार से प्रहार करते थे (104, 105, 106)। किन्तु जैसे कवच से ढका हुआ योद्धा संग्राम के मोर्चे पर रहता है, वैसे ही वे महावीर वहाँ दुर्व्यवहार को सहते हुए आत्म-नियन्त्रित रहे (107)।

दो मास से अधिक अथवा छः मास तक भी महावीर कुछ नहीं खाते-पीते थे। रात-दिन वे राग-द्वेष-रहित रहे (108)। कभी वे दो दिन के उपवास के बाद में, कभी तीन दिन के उपवास के बाद में, कभी चार अथवा पाँच दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे (109)। वे गृहस्थ के लिए बने हुए सुविशुद्ध आहार की ही भिक्षा ग्रहण करते थे और उसको वे समता-युक्त बने रहकर उपयोग में लाते थे (111)।

महावीर कषाय रहित थे। वे शब्दों और रूपों में अनासक्त रहते थे। जब वे असर्वज्ञ थे, तब भी उन्होंने साहस के साथ संयम पालन करते हुए एक बार भी प्रमाद नहीं किया (112)। महावीर जीवन-पर्यन्त समता-युक्त रहे (113)।

चयनिका के उपर्युक्त विषय-विवेचन से स्पष्ट है कि आचारांग में जीवन के मूल्यात्मक पक्ष की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। इसी विशेषता से प्रभावित होकर यह चयन (आचारांग चयनिका) पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। सूत्रों का हिन्दी अनुवाद मूलानुगामी रहे, ऐसा प्रयास किया गया है। यह दृष्टि रही है कि अनुवाद पढ़ने से ही शब्दों की विभक्तियाँ एवं उनके अर्थ समझ में आ जाएँ। अनुवाद को प्रवाहमय बनाने की भी इच्छा रही है। कहाँ तक सफलता मिली है, इसको तो पाठक ही बता सकेंगे। अनुवाद के अतिरिक्त सूत्रों का व्याकरणिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। इस विश्लेषण में जिन संकेतों का प्रयोग

किया गया है, उनको संकेत सूची में देख कर समझा जा सकता है। यह आशा की जाती है कि प्राकृत को व्यवस्थित रूप से सीखने में सहायता मिलेगी तथा व्याकरण के विभिन्न नियम सहज में ही सीखे जा सकेंगे। यह सर्व विदित है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत सूत्र एवं उनके व्याकरणिक विश्लेषण से व्याकरण के साथ-साथ शब्दों के प्रयोग भी सीखने में मदद मिलेगी। शब्दों की व्याकरण और उनका अर्थपूर्ण प्रयोग दोनों ही भाषा सीखने के आधार होते हैं। अनुवाद एवं व्याकरणिक विश्लेषण जैसा भी बन पाया है पाठकों के समक्ष है। पाठकों के सुझाव मेरे लिए बहुत ही काम के होंगे।

आभार :

आचारांग-चयनिका के लिए मुनि जम्बूविजयजी द्वारा सम्पादित आचारांग के संस्करण का उपयोग किया गया है। इसके लिए मुनि जम्बूविजयजी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आचारांग का यह संस्करण श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से सन् १९७७ में प्रकाशित हुआ है।

आगम के प्रकाण्ड विद्वान् महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने आचारांग-चयनिका का प्राक्कथन लिखने की स्वीकृति प्रदान की, इसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मेरे विद्यार्थी डॉ. श्यामराव व्यास, दर्शन-विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर का आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद एवं उसकी प्रस्तावना को पढ़कर उपयोगी सुझाव दिए। डॉ. प्रेम सुमन जैन, जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, डॉ. उदयचन्द जैन, जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, श्री मानमल कुदाल,

आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर तथा डॉ. हुकमचन्द जैन, जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर के सहयोग के लिए भी आभारी हूँ।

मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमलादेवी सोगाणी ने इस पुस्तक को तैयार करने में जो अनेक प्रकार से सहयोग दिया, उसके लिए आभार प्रकट करता हूं।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए राजस्थान प्राकृत-भारती संस्थान, जयपुर के सचिव श्री देवेन्द्रराजजी मेहता एवं संयुक्त-सचिव महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने जो व्यवस्था की है, उसके लिए उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

फ्रेण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, जयपुर को सुन्दर छपाई के लिए धन्यवाद देता हूँ।

कमलचन्द सोगाणी

सह-प्रोफेसर, दर्शन-विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान) 25-4-83

अनुक्रमणिका

आचारांग-चयनिका

आचारांग-चयनिका

1 सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं— इहमेगेसिं णो सण्णा भवति । तं जहा—

पुरत्थिमातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
दाहिणाओ वा दिसाओ आगतो अहमंसि,
पच्चत्थिमातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
उत्तरातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
उड्ढातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
अधेदिसातो वा आगतो अहमंसि,

अन्नतरीतो दिसातो वा अणुदिसातो वा आगतो अहमंसि, एवमेगेसिं णो णातं भवति । अत्थि मे आया उववाइए, णत्थि मे आया उववाइए, के अहं आसी, के वा इओ चुते पेच्चा भविस्सामि ।

आचारांग-चयनिका

1. हे आयुष्मन् (चिरायु)! मेरे द्वारा (यह) सुना हुआ (है) (कि) उन भगवान् के द्वारा इस प्रकार (यह) कहा गया (है)—यहाँ कुछ मनुष्यों में (यह) होश नहीं होता है। जैसे—

   मैं पूरबी दिशा से आया हूँ,

   या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ,

   या मैं पश्चिमी दिशा से आया हूँ,

   या मैं उत्तर दिशा से आया हूँ,

   या मैं ऊपर की दिशा से आया हूँ,

   या मैं नीचे की दिशा से आया हूँ,

   या (मैं) अन्य ही दिशाओं से (आया हूँ),

   या मैं ईशान कोण आदि दिशाओं से आया हूँ,

   इसी प्रकार कुछ के द्वारा (यह) समझा हुआ नहीं (होता है); (कि) मेरी (स्वयं की) आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली (है), (या) मेरी (स्वयं की) आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली नहीं (है), (पिछले जन्म में) मैं कौन था? या (जब) (मैं) इस लोक से गया हुआ (होता हूँ) (तो) आगामी जन्म में (मैं) क्या होऊँगा?

2 से ज्जं पुरा जाणेज्जा सहसम्मुइयाए परवागरणेणं अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा ।

3 से आयावादी लोगावादी कम्मावादी किरियावादी ।

4 अपरिण्णायकम्मे खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ वा अणुदिसाओ वा अणुसंचरति, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ सहेति, अणेगरूवाओ जोणीओ संधेति, विरूवरूवे फासे पडिसंवेदयति ।

5 तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता । इमस्स चेव जीवियस्स

2. इसके विपरीत वह (कोई मनुष्य उपर्युक्त बातों को) (इन तरीकों से) जान लेता है (1) स्वकीय स्मृति के द्वारा (2) दूसरों (अतीन्द्रिय ज्ञानियों) के कथन के द्वारा (3) अथवा दूसरों (अतीन्द्रिय ज्ञानियों के सम्पर्क से समझे हुए व्यक्तियों) के समीप सुनकर।

3. (जो यह जान लेता है कि उसकी आत्मा अमुक दिशा से आई है तथा वह पुनर्जन्म लेने वाली है)

वह (व्यक्ति) (ही) आत्मा को मानने वाला (होता है), (अजीव-पुद्गलादि) लोक को मानने वाला (होता है), कर्म-(बन्धन) को मानने वाला (होता है) (और) (मन-वचन-काय की) क्रियाओं को मानने वाला (होता है)।

4. सचमुच यह मनुष्य (ऐसा है) (कि) (जिसके द्वारा) (मन-वचन-काय की) क्रिया समझी हुई नहीं (है), जो इन दिशाओं से या अनुदिशाओं (ईशान आदि कोणों) से (आकर) (संसार में) परिभ्रमण करता है, (जो) सब दिशाओं से, सभी अनु-दिशाओं से (दुःखों को) सहन करता है, (जो) अनेक प्रकार की योनियों से (अपने को) जोड़ता है, (तथा) (जो) अनेक (मनोहर) रूपों (सुखों) को एवं स्पर्शों (दुःखों) को अनुभव करता है।

5. उस (मनुष्य) के लिए ही भगवान् के द्वारा (इस प्रकार) ज्ञान दिया हुआ (है)। (मनुष्य के द्वारा मन-वचन-काय की क्रियाएँ इन बातों के लिए की जाती है) (1) इस ही (वर्त-मान) जीवन (की रक्षा) के लिए, (2) प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए, (3) (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन)

परिवंदण – माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं ।

6 एतावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ।

7 जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि ।

8 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेउं से सयमेव पुढविसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणति । तं से अहिताए, तं से अबोहीए ।

9 इमस्स चेव जीवितस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव उदयसत्थं

के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण, तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए।

6. सम्पूर्ण लोक (जगत) में (मन-वचन-काय की) क्रियाओं के इतने (उपर्युक्त) प्रारम्भ (शुरुआत) समझे जाने योग्य होते हैं।

7. जिसके द्वारा लोक में इन (मन-वचन-काय संबंधी) क्रियाओं के प्रारंभ (शुरुआत) समझे हुए होते हैं, वह ही ज्ञानी (ऐसा) है (जिसके द्वारा) (उपर्युक्त) क्रिया-(समूह) (दृष्टाभाव से) जाना हुआ है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

8. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही पृथ्वीकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा पृथ्वीकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है, या पृथ्वीकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है); वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

9. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा

समारभति, अण्णेहिं वा उदयसत्थं समारभावेति, अण्णे वा उदयसत्थं समारभंते समणुजाणति। तं से अहिताए तं से अबोधीए।

10 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव अगणिसत्थं समारभति, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारभावेति, अण्णे वा अगणिसत्थं समारभमाणे समणुजाणति। तं से अहिताए, तं से अबोधीए।

11 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव वणस्सतिसत्थं

पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही जलकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा जलकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या जलकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

10. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही अग्निकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा अग्निकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या अग्निकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

11. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर, तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए

समारभति, अण्णेहिं वा वणस्सतिसत्थं समारभावेति, अण्णे वा वणस्सतिसत्थं समारभमाणे समणुजाणति। तं से अहियाए, तं से अबोहीए।

12 से बेमि— इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मयं;
इमं पि वुड्ढिधम्मयं, एयं पि वुड्ढिधम्मयं;
इमं पि चित्तमंतयं, एयं पि चित्तमंतयं;
इमं पि छिण्णं मिलाति, एयं पि छिण्णं मिलाति;
इमं पि आहारगं, एयं पि आहारगं;
इमं पि अणितियं, एयं पि अणितियं;
इमं पि असासयं, एयं पि असासयं;

स्वयं ही वनस्पतिकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा वनस्पतिकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या वनस्पतिकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

12. वह (मनुष्य और वनस्पतिकायिक जीव की तुलना) मैं कहता हूँ—यह (मनुष्य) भी उत्पत्ति स्वभाव (वाला) (होता है),
यह (वनस्पति) भी उत्पत्ति स्वभाव (वाली) (होती है)।
यह (मनुष्य) भी बढ़ोतरी स्वभाव (वाला) (होता है),
यह (वनस्पति) भी बढ़ोतरी स्वभाव (वाली) (होती है)।
यह (मनुष्य) भी चेतना वाला (होता है),
यह (वनस्पति) भी चेतना वाली होती है।
यह (मनुष्य) भी कटा हुआ उदास (होता है),
यह (वनस्पति) भी कटी हुई उदास (होती है)।
यह (मनुष्य) भी आहार करने वाला (होता है),
यह (वनस्पति) भी आहार करने वाली (होती है)।
यह (मनुष्य) भी नाशवान् (होता है),
यह (वनस्पति) भी नाशवान् (होती है)।
यह (मनुष्य) भी हमेशा न रहने वाला (होता है),
यह (वनस्पति) भी हमेशा न रहने वाली (होती है)।
यह (मनुष्य) भी बढ़ने (वाला) और क्षय वाला (होता है),

इमं पि चयोवचइयं, एयं पि चयोवचइयं;
इमं पि विप्परिणामधम्मयं, एयं पि विप्परिणाम
—धम्मयं ।

13 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघायहेतुं से सयमेव तसकायसत्थं समारभति, अण्णेहि वा तसकायसत्थं समारभावेति, अण्णे वा तसकायसत्थं समारभमाणे समणुजाणति । तं से अहिताए, तं से अबोधीए ।

14 से बेमि— अप्पेगे अच्चाए वधेंति, अप्पेगे अजिणाए वधेंति, अप्पेगे मंसाए वहेंति, अप्पेगे सोणिताए वधेंति, अप्पेगे हिययाए वहिंति, एवं पित्ताए वसाए पिच्छाए पुच्छाए वालाए सिंगाए

यह (वनस्पति) भी बढ़ने वाली और क्षयवाली (होती है)।
यह (मनुष्य) भी (अवस्था में) परिवर्तन स्वभाव (वाला) (होता है),
यह (वनस्पति) भी (अवस्था में) परिवर्तन स्वभाव (वाली) होती है।

13. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर, तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही त्रसकाय (दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रियों वाले)–जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा त्रसकाय–जीव समूह की हिंसा करवाता है या त्रसकाय–जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

14. (प्राणियों का वध क्यों किया जाता है ?) (उसको) मैं कहता हूँ—

कुछ मनुष्य पूजा-सत्कार के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य हरिण आदि के चमड़े के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य मांस के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य खून के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य हृदय के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, इसी प्रकार पित्त के लिए, चर्बी के लिए, पाँख के लिए,

विसाणाए दंताए दाढाए नहाए ण्हारूणीए अट्ठिए अट्ठिमिजाए अट्ठाए अणट्ठाए ।

अप्पेगे हिंसिसु मे त्ति वा, अप्पेगे हिंसंति वा, अप्पेगे हिंसिस्संति वा णे वधेंति ।

15 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव वाउसत्थं समारभति, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारभावेति, अण्णे वा वाउसत्थं समारभंते समणुजाणति । तं से अहियाए, तं से अबोधीए ।

16 से त्तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए सोच्चा भगवतो

पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, हाथी आदि के दाँत के लिए, दाँत के लिए, दाढ के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, हड्डी के भीतरी रस के लिए, किसी (और) उद्देश्य के लिए (तथा) बिना किसी उद्देश्य के (व्यर्थ ही) (प्राणियों का वध करते हैं)।

कुछ मनुष्य, (उन्होंने) मेरे (स्वजन की) हिंसा संभवत: की थी, इस प्रकार (कहकर) (उनका वध करते हैं)। कुछ मनुष्य, (यह मेरे स्वजन की) संभवत: (हिंसा करता है), (यह) (कहकर) (उसको) हिंसा करते हैं, कुछ मनुष्य, (ये मेरे स्वजन की) हिंसा करेंगे, (यह कहकर) उनका वध करते हैं।

15. (यह दु:ख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर, तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दु:खों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही वायुकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा वायुकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या वायुकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

16. (इसलिये) वह (अहिंसा-साधक) उस ग्रहण किये जानें योग्य (संयम) को समझता हुआ उठे। भगवान् से या साधुओं से सुनकर कुछ (मनुष्यों) के द्वारा यहाँ (यह) सीखा हुआ होता

अणगाराणं इहमेगेसिं णातं भवति— एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए ।

17 तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवणिकायसत्थं समारभेज्जा, णेवऽण्णेहिं छज्जीवणिकायसत्थं समारभावेज्जा, णेवऽण्णे छज्जीवणिकायसत्थं समारभंते समणुजाणेज्जा ।

जस्सेते छज्जीवणिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि ।

18 अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोधे अविजाणए । अस्सिं लोए पव्वहिए ।

19 जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालिया विजहित्ता विसोत्तियं ।

है (कि) यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही बन्धन में (डालने वाला है), यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही मूर्च्छा में (पटकने वाला है), यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही अनिष्ट (अमंगल) में (धकेलने वाला है) (तथा) यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही नरक में (ले जाने वाला है)।

17. उस (हिंसा-कार्य के परिणामों) को समझकर बुद्धिमान् (मनुष्य) स्वयं छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह की कभी भी हिंसा नहीं करता है, (तथा) दूसरों के द्वारा छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह की हिंसा कभी भी नहीं करवाता है, (तथा) छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का कभी भी अनुमोदन नहीं करता है।

जिसके द्वारा (उपर्युक्त) इन छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह के हिंसा-कार्य समझे हुए होते हैं वह ही ज्ञानी (ऐसा) (है) (जिसके द्वारा) (उपर्युक्त) हिंसा-कार्य (दृष्टाभाव से) जाना हुआ है। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

18. (मूर्च्छित) मनुष्य (अशांति से) पीड़ित (होता है), (समता भाव से) दरिद्र (होता है), (उसको) (अहिंसा पर आधारित मूल्यों का) ज्ञान देना कठिन (होता है) (तथा) (वह) (अध्यात्म को) समझने वाला नहीं (होता है)। इस लोक में (मूर्च्छित मनुष्य) अति दुःखी (रहता है)।

19. जिस प्रबल इच्छा से (मनुष्य) (अहिंसा-पथ पर) निकला हुआ (है), उस (प्रबल इच्छा) को (ही) बनाए रखकर (तथा) हिंसात्मक चिन्तन को छोड़कर (वह) (चलता जाय)।

20 पणया वीरा महावीहिं ।

21 लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं । से बेमि—णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा । जे लोगं अब्भाइक्खति से अत्ताणं अब्भाइक्खति, जे अत्ताणं अब्भाइक्खति से लोगं अब्भाइक्खति ।

22 जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ।

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासति, सुणमाणे सद्दाइं सुणेति ।

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छति, सद्देसु यावि ।

एस लोगे वियाहिते । एत्थ अगुत्ते अणाणाए पुणो पुणो

20. महापथ (अहिंसा-समता पथ) पर झुके हुए वीर (होते हैं)।

21. (अर्हत् की) आज्ञा से प्राणी समूह को अच्छी तरह से जान-कर (मनुष्य) (उसको) निर्भय (बना दे) अर्थात् उसको अभय दान दे।
मैं कहता हूँ—(व्यक्ति) स्वयं प्राणी-समूह पर (उसके न होने का) झूठा आरोप कभी लगाये, न ही निज पर (अपने न होने का) झूठा आरोप कभी लगाये। जो प्राणी-समूह पर (उसके न होने का) झूठा आरोप लगाता है, वह निज पर (अपने न होने का) झूठा आरोप लगाता है। जो निज पर (अपने न होने का) झूठा आरोप लगाता है, वह प्राणी-समूह पर (उसके न होने का) झूठा आरोप लगाता है।

22. जो दुश्चरित्रता (है), वह (अशांति में) चक्कर काटना है; जो (अशान्ति में) चक्कर काटना (है), वह (ही) दुश्च-रित्रता (है)।
(दृष्टाभाव से) देखता हुआ (मनुष्य) ऊपर की ओर, नीचे की ओर, तिरछी दिशा में और सामने की ओर (स्थित) रूपों को (केवल) देखता है, (दृष्टाभाव से) सुनता हुआ मनुष्य शब्दों को (केवल) सुनता है। (किन्तु) मूर्च्छित होता हुआ (मनुष्य) ऊपर की ओर, नीचे की ओर, तिरछी दिशा में और सामने की ओर (स्थित) रूपों में मूर्च्छित होता है, और शब्दों में भी (मूर्च्छित होता है)।
यह (मूर्च्छा) (ही) संसार कहा गया (है)। यहाँ पर (जो) मूर्च्छित (मनुष्य) (है), (वह) (अर्हत्-जीवन-मुक्त) की आज्ञा में नहीं (है)। (जो) बार बार दुश्चरित्रता का स्वाद (लेने वाला है), (जो) कुटिल आचरण करने वाला (है), (जो)

गुणासाते वंकसमायारे पमत्ते गारमावसे ।

23 णिज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिणिव्वाणं सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूताणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं अस्सातं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं ति बेमि ।

24 जे अज्झत्थं जाणति से बहिया जाणति, जे बहिया जाणति से अज्झत्थं जाणति । एतं तुलमण्णेसिं ।

25 अभिकंतं च खलु वयं सपेहाए ततो से एगया मूढभावं जणयंति ।

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते व णं एगदा णियगा पुव्वि परिवदंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवदेज्जा । णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा

प्रमादी (ग्रासक्ति-युक्त) (है), (वह) (वास्तव में) (मूर्च्छा रूपी) घर में (ही) निवास करता है।

23. प्रत्येक (जीव) की शान्ति को विचार करके ग्रौर देख करके (तुम हिंसा को छोड़ो), (चूँकि) सब प्राणियों के लिए, सब जन्तुग्रों के लिए, सब जीवों के लिए, सब चेतनवानों के लिए पीड़ा, ग्रशान्ति (है), महा भयंकर (है), दुःख-युक्त (है)। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

24. जो ग्रध्यात्म (समतामयी परम-ग्रात्मा) को जानता है, वह बाहर की ग्रोर (स्थित) (सांसारिक विषमताग्रों) को समझता है; जो बाहर की ग्रोर (स्थित) (सांसारिक विषमताग्रों) को समझता है, वह ग्रध्यात्म (समतामयी परम-ग्रात्मा) को जानता है। (जीवन के सार का) खोज करने वाला (मनुष्य) इस (आध्यात्मिक) तराजू को (समझे)।

25. वास्तव में (ग्रपनी) बीती हुई आयु को ही देखकर (मनुष्य व्याकुल होता है), (ग्रौर) बाद में (बुढ़ापे में) उसके (मनोभाव) एक समय (उसमें) मूर्खतापूर्ण ग्रवस्था उत्पन्न कर देते हैं।
ग्रौर जिनके साथ (वह) रहता है, एक समय वे ही ग्रात्मीय-(जन) उसको ही पहले बुरा-भला कहते हैं, पीछे वह भी उन ग्रात्मीय-(जनों) को बुरा-भला कहता है। (अतः तुम समझो कि) वे तुम्हारे सहारे के लिए या सहायता के लिए पर्याप्त नहीं (हैं)। (ध्यान रखो) तुम भी उनके सहारे के लिए या सहायता के लिए पर्याप्त नहीं (हो)। (बुढ़ापे की अवस्था

सरणाए वा। से ण हासाए, ण किड्डाए, ण रतीए ण विभूसाए।

26 इच्चेवं समुट्ठिते अहोविहाराए अंतरं च खलु इमं सपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमादए। वओ अच्चेति जोव्वणं च।

27 जीविते इह जे पमत्ता से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवेत्ता उत्तासयित्ता अकडं करिस्सामि त्ति मण्णमाणे।

28 एवं जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सातं अणभिक्कंतं च खलु वयं सपेहाए खणं जाणाहि पंडिते!

जाव सोतपण्णाणा अपरिहीणा जाव णेत्तपण्णाणा अपरिहीणा जाव घाणपण्णाणा अपरिहीणा जाव जीहपण्णाणा अपरिहीणा जाव फासपण्णाणा अपरिहीणा, इच्चेतेहिं

में) वह (मनुष्य) मनोरंजन के लिए, क्रीड़ा के लिए, प्रेम के लिए तथा (प्रचलित) सजावट के लिए (नीरसता व्यक्त करता है)।

26. इस प्रकार (मनुष्य) (वुढ़ापे को समझकर) आश्चर्यकारी संयम के लिए सम्यक्-प्रयत्नशील (बने)। (अतः) इस अवसर (वर्तमान मनुष्य-जीवन के संयोग) को देखकर धीर मनुष्य क्षणभर के लिए भी प्रमाद न करे। (समझो) आयु बीतती है, यौवन भी (बीतता है)। (अतः मनुष्य प्रमाद न करे)।

27. इस जीवन में जो (व्यक्ति) प्रमाद-युक्त (होते हैं), (वे आयु व्यतीत होने को समझ नहीं पाते हैं), (अतः) प्रमादी-व्यक्ति (जीवों को) मारने वाला, छेदने वाला, भेदने वाला, (उनकी) हानि करने वाला, (उनका) अपहरण करने वाला, (उन पर) उपद्रव करने वाला (तथा) (उनको) हैरान करने वाला (होता है)। कभी नहीं किया गया (है) (ऐसा) मैं करूँगा, इस प्रकार विचारता हुआ (प्रमादी व्यक्ति हिंसा पर उतारू हो जाता है)।

28. हे पण्डित ! इस प्रकार प्रत्येक (जीव) के सुख-दुःख को समझकर (और) अपनी आयु को ही सचमुच न बीती हुई देखकर, (तू) उपयुक्त अवसर को जान।
जब तक श्रवणेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति) कम नहीं (होती है),
जब तक चक्षु-इन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति) कम नहीं (होती है),
जब तक घ्राणेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति) कम नहीं (होती है),
जब तक रसनेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति) कम नहीं (होती है),

विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं सम्मं समणुवासेज्जासि त्ति बेमि ।

29 विमुक्का हु ते जणा जे जणा पारगामिणो, लोभमलोभेण दुगुंछमाणे लद्धे कामे णाभिगाहति ।

30 णो हीणे, णो अतिरित्ते ।

31 जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं खेत्त-वत्थु ममायमाणाणं ।

णं एत्थ तवो वा दमो वा णियमो वा दिस्सति ।

32 इणमेव णावकंखंति जे जणा धुवचारिणो ।
जाती–मरणं परिण्णाय चर संकमणे दढे ।।
णत्थि कालस्स णागमो ।

सव्वे पाणा पिआउया सुहसाता दुक्खपडिकूला अप्पियवधा पियजीविणो जीवितुकामा । सव्वेसिं जीवितं पियं ।

जब तक स्पर्शनेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति) कम नहीं (होती है), (तब तक) इन इस प्रकार अनेक भेद (वाली) अक्षीण (इन्द्रिय) ज्ञान-(शक्तियों) द्वारा (तू) उचित प्रकार से आत्म-हित को सिद्ध कर ले।

29. वे मनुष्य निश्चय ही (दुःख)·मुक्त हैं, जो मनुष्य (विषमताओं के) पार पहुँचने वाले (हैं)। (साधक) अति-तृष्णा को अतृष्णा से झिड़कता हुआ (आगे बढ़ता है), (और) प्राप्त हुए विषय भोगों का (भी) सेवन नहीं करता है।

30. कोई नीच नहीं (है), कोई उच्च नहीं (है)।

31. भूमि व धन-दौलत की इच्छा करते हुए कुछ व्यक्तियों के लिए यहाँ अलग-अलग (प्रकार का) जीवन प्रिय (है)। उन (व्यक्तियों में) तप, आत्म-नियन्त्रण और सीमा-बन्धन नहीं देखा जाता है।

32. जो लोग परम शांति के इच्छुक (हैं) (वे) इस (ममत्व से उत्पन्न व्याकुलता) को नहीं चाहते हैं।
(अतः) (तू) जन्म-मरण (अशान्ति) को जानकर दृढ़-संयम पर चल।
मृत्यु के लिए (किसी क्षण भी) न आना नहीं है।
सब (ही) प्राणी (ऐसे हैं) (जिनको) (अपने) आयु प्रिय (होते हैं), (जिनके लिए) (अपने) सुख अनुकूल (होते हैं), (अपने) दुःख प्रतिकूल (होते हैं), (अपने) वध अप्रिय (होते हैं), (अपनी) जिन्दा (रहने की) (अवस्थाएँ) प्रिय होती हैं और (जो) अपने जीवन के इच्छुक (होते हैं)। सब (प्राणियों) के लिए जीवन प्रिय (होता है)।

33 तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं संसिंचियाणं तिविधेण जा वि से तत्थ मत्ता भवति अप्पा वा बहुगा वा से तत्थ गढिते चिट्ठति भोयणाए। ततो से एगदा विप्परिसिट्ठं संभूतं महोवकरणं भवति। तं पि से एगदा दायादा विभयंति, अदत्तहारो वा सेऽवहरति, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सति वा से, विणस्सति वा से, अगारदाहेण वा से डज्झति।

इति से परस्सऽट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेति।

मुणिणा हु एतं पवेदितं।
अणोहंतरा एते, णो य ओहं तरित्तए।
अतीरंगमा एते, णो य तीरं गमित्तए।
अपारंगमा एते, णो य पारं गमित्तए।
आयाणिज्जं च आदाय तम्मि ठाणे ण चिट्ठति।
वितहं पप्प खेतण्णे तम्मि ठाणम्मि चिट्ठति।

34 उद्देसो पासगस्स णत्थि।

बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमितदुक्खे दुक्खी

33. तो (व्यक्ति) मनुष्य और पशु को रखकर, (उनको) कार्य में लगाकर तीनों प्रकार (किसी मनुष्य, पशु और स्वयं) के (साधनों) द्वारा (अर्थ को) बढ़ाकर (जीता है)। जो भी उसके पास उस अवसर पर अल्प या बहुत (धन की) मात्रा होती है, उसमें वह आसक्त रहता है (और) भोग के लिए (उस अर्थ को काम में लेता है)।

एक समय (भोग के) बाद में बचा हुआ, उपलब्ध (धन) उसके लिए महान् साधन हो जाता है। उसको भी एक समय उसके उत्तराधिकारी बाँट लेते हैं या चोर उसका अपहरण कर लेते हैं या राजा उसको छीन लेते हैं या वह नष्ट हो जाता है, या वह बर्बाद हो जाता है या वह घर के दहन से जला दिया जाता है।

इस प्रकार वह अज्ञानी दूसरे के प्रयोजन के लिए क्रूर कर्मों को करता हुआ उनके द्वारा प्राप्त दुःख से व्याकुल हुआ विपरीतता (अशान्ति) को प्राप्त होता है।

ज्ञानी के द्वारा ही यह कहा गया (है)।

ये (अशान्ति को प्राप्त करने वाले) पार जाने में असमर्थ (होते हैं)—संसाररूपी प्रवाह में तैरने के लिये बिल्कुल समर्थ नहीं (हैं)। ये तीर पर जाने वाले नहीं (हैं)—तीर पर जाने के लिए बिल्कुल (समर्थ) नहीं (होते हैं)। ये पार जाने वाले नहीं (हैं)—पार जाने के लिए बिल्कुल (समर्थ) नहीं (होते हैं)। ग्रहण किए जाने योग्य को ही ग्रहण करके (धूर्त व्यक्ति) उस स्थान पर नहीं ठहरता है। असत्य को प्राप्त करके धूर्त (व्यक्ति) उस स्थान पर ठहरता है।

34. द्रष्टा (समतादर्शी) के लिए कोई उपदेश (शेष) नहीं है। और अज्ञानी (विषमतादर्शी) आसक्ति-युक्त (होता है),

दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टति त्ति बेमि ।

35 आसं च छंदं च विगिंच धीरे ।
तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु ।
जेण सिया तेण णो सिया ।
इणमेव णावबुज्झंति जे जणा मोहपाउडा ।

36 लाभो त्ति ण मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोएज्जा, बहुं पि लद्धुं ण णिहे । परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्केजा । अण्णहा णं पासए परिहरेज्जा ।

37 कामा दुरतिक्कमा । जीवियं दुप्पडिबूहगं । कामकामी खलु अयं पुरिसे, से सोयति जूरति तिप्पति पिड्डति परितप्पति ।

38 आयतचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहेभागं जाणति, उड्ढं भागं जाणति, तिरियं भागं जाणति, गढिए अणुपरियट्टमाणे ।

भोगों का अनुमोदन करने वाला (होता है), अपरिमित दुःख के कारण दुःखी (होता है), (तथा) दुःखों के ही भँवर में फिरता रहता है। इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

35. हे धीर ! (तू) (मनुष्यों के प्रति) आशा को और (वस्तुओं की) इच्छा को छोड़।
तू ही उस (आशा और इच्छारूपी) विष को ग्रहण करके (दुःखी होता है)।
जिस (वस्तु) के कारण (सुख-दुःख) होता है, उस (वस्तु) के कारण (सुख-दुःख) नहीं (भी) होता है। (ऐसा सोचने-समझने से मनुष्य पर से स्व की ओर लौट आता है)।
जो मनुष्य आसक्ति से ढके हुए (हैं), (वे) इस (बात) को ही नहीं समझते (हैं)।

36. (यदि) लाभ (है), (तो) मद न कर; (यदि) हानि (है), (तो) शोक मत कर; बहुत भी प्राप्त करके आसक्ति-युक्त मत (बन)। अपने को परिग्रह से दूर रख। द्रष्टा उस (संयम के योग्य परिग्रह) का विपरीत रीति (अनासक्त भाव) से परिभोग करता है।

37. इच्छाएँ दुर्जय (होती हैं)। जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता (है)। यह मनुष्य इच्छाओं (की तृप्ति) का ही इच्छुक (होता है), (इच्छाओं के तृप्त न होने पर) वह शोक करता है, क्रोध करता है, रोता है, (दूसरों को) सताता है (और) (उनको) नुकसान पहुँचाता है।

38. (जिसकी) आँखे विस्तृत (होती हैं), (वह) (सम्पूर्ण) लोक को देखने वाला (होता है)। (वह) लोक के नीचे भाग को

संधिं विदित्ता इह मच्चिएहिं,
एस वीरे पसंसिते जे बद्धे पडिमोयए।

39 कासंकसे खलु अयं पुरिसे, बहुमायी, कडेण मूढे, पुणो तं करेति लोभं, वेरं वड्ढेति अप्पणो।

40 जे ममाइयमतिं जहाति से जहाति ममाइतं।
से हु दिट्ठपहे मुणी जस्स णत्थि ममाइतं।

41 जे अणण्णदंसी स अणण्णारामे, जे अणण्णारामे से अणण्णदंसी।

42 उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, से सव्वतो
सव्वपरिण्णाचारी ण लिप्पति छणपदेण वीरे।

जानता है, ऊपर के भाग को जानता है, तिरछे भाग को जानता है। आसक्त (मनुष्य) (संसार में) फिरता हुआ (दु:खी) (होता है)।
(अत:) (यहाँ) अवसर को जानकर मनुष्य के द्वारा (इच्छाओं से मुक्त होने का प्रयत्न किया जाना चाहिए), जो (इच्छाओं से) बँधे हुओं को मुक्त करता है, वह वीर प्रशंसित (होता है)।

39. सचमुच यह मनुष्य संसार में आसक्त (है), (यह) अति कपटी (है), (आसक्ति) के कारण (यह) अज्ञानी (बना है), इसलिए फिर (विषयों की) लोलुपता को करता है (और) (इस तरह) (यह) (संसार में) अपने लिए दुश्मनी बढ़ाता है।

40. जो ममतावाली वस्तु-बुद्धि को छोड़ता है, वह ममतावाली वस्तु को छोड़ता है; जिसके लिए (कोई) ममतावाली वस्तु नहीं है, वह ही (ऐसा) ज्ञानी है, (जिसके द्वारा) (अध्यात्म)-पथ जाना गया है।

41. जो (मनुष्य) समतामयी (आत्मा) के दर्शन करने वाला (है), वह अनुपम प्रसन्नता में (रहता है), जो (मनुष्य) अनुपम प्रसन्नता में (रहता है), वह समतामयी (आत्मा) के दर्शन करने वाला (है)।

42. वह ऊँची, नीची (और) तिरछी दिशाओं में सब ओर से पूर्ण जागरुकता से चलने वाला (होता है)। (अत:) (वह) वीर (ऊर्ध्वगामी ऊर्जा वाला) हिंसा-स्थान के साथ (अप्रमादी होने के कारण) संलग्न नहीं किया जाता है।

43 से मेधावी जे अणुग्घातणस्स खेत्तण्णे जे य बंधपमोक्ख-
मण्णेसी ।
कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के ।
से जं च आरभे, जं च णारभे, अणारद्धं च ण आरभे ।

44 सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरंति ।

45 जस्सिमे सद्दा य रूवा य गंधा य रसा य फासा य अभिसमण्णागता भवंति से आतवं णाणवं वेयवं धम्मवं बंभवं ।

46 पासिय आतुरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए ।
मंता एयं मतिमं पास,
आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा,
मायी पमायी पुणरेति गब्भं ।

43. जो भी (कर्म)-बंधन और (कर्म से) छुटकारे के विषय में खोज करने वाला (होता है), जो आघातरहितता (अहिंसा) का जानने वाला (होता है), वह मेधावी (शुद्ध बुद्धि) (होता है)।

कुशल (जागरूक) (व्यक्ति) न (कर्मों से) बँधा हुआ (है) और न (कर्मों से) मुक्त किया गया (है)। (आत्मानुभवी वंधन और मुक्ति के विकल्पों से परे होता है)।

वह (कुशल) जिस (काम) को भी करता है, (व्यक्ति व समाज उसको ही करे)। (वह) जिस (काम) को बिल्कुल नहीं करता है, (व्यक्ति व समाज) (कुशल के द्वारा) नहीं किए हुए (काम) को बिल्कुल न करे।

44. अज्ञानी सदा सोए हुए (सद्मार्ग को भूले हुए) हैं, ज्ञानी सदा जागते हैं (सद्मार्ग में स्थित हैं)।

45. जिसके द्वारा ये शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श (दृष्टाभाव से) अच्छी तरह जाने गए होते हैं, वह अत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् (और) ब्रह्मवान् (होता है)।

46. पीड़ित प्राणियों को देखकर (तू) अप्रमादी (होकर) गमन कर। (यहाँ) (प्राणी) (पीड़ा में) चीखते हुए (दिखाई देते हैं)। हे बुद्धिमान्! इसको तू देख।

यह पीड़ा हिंसा से उत्पन्न होने वाली (है), (तथा) माया-युक्त और प्रमादी (व्यक्ति) गर्भ में (बार-बार) आता है, इस प्रकार जानकर (तू अप्रमादी बन)।

शब्द और रूप की उपेक्षा करता हुआ (मनुष्य) संयम में

उवेहमाणो सद्द–रूवेसु अंजू माराभिसंकी मरणा पमुच्चति ।

47 अप्पमत्तो कामेहिं, उवरतो पावकम्मेहिं, वीरे आतगुत्ते खेयण्णे ।
जे पज्जवजातसत्थस्स खेतण्णे से असत्थस्स खेतण्णे । जे असत्थस्स खेतण्णे से पज्जवजातसत्थस्स खेतण्णे ।

48 अकम्मस्स ववहारो ण विज्जति ।
कम्मुणा उवाधि जायति ।

49 कम्मं च पडिलेहाए कम्ममूलं च जं छणं, पडिलेहिय सव्वं समायाय दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे ।

50 अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे, पलिछिंदियाणं णिक्कम्मदंसी ।

तत्पर (हो जाता है) (तथा) (बार-बार) मरण से डरने वाला मरण से छुटकारा पा जाता है।

47. (जो) इच्छाओं में मूर्च्छा रहित (होता है) (तथा) पाप-कर्मों से मुक्त (होता है), (वह) वीर (ऊर्ध्वगामी ऊर्जा वाला) (होता है), आत्म-रक्षित (तथा) (दृष्टाभाव से) जानने वाला (होता है)।
जो पर्यायों से उत्पन्न (दृष्टिरूपी) शस्त्र का जानने वाला (है) वह अशस्त्र (द्रव्य-दृष्टि) का जानने वाला है। जो अशस्त्र (द्रव्य-दृष्टि) का जानने वाला (है), वह पर्यायों से उत्पन्न (दृष्टिरूपी) शस्त्र का जानने वाला (है) [पर्याय-दृष्टि, द्रव्य-दृष्टि की नाशक होती है, इसलिए पर्याय-दृष्टि को शस्त्र कहा है]।

48. कर्मों से रहित (व्यक्ति) के लिए (कोई) सामान्य, लोक प्रचलित आचरण नहीं होता है। उपाधि (विभेदक गुण) कर्मों से उत्पन्न होती है/होता है।

49. (जो मनुष्य) कर्म को ही देखकर तथा जो हिंसा कर्म का आधार (है) (उसको) देखकर पूर्ण (संयम) को ग्रहण करके (रहता है), वह दोनों अंतों (राग-द्वेष, शुभ-अशुभ) के द्वारा नहीं कहा जाता हुआ (होता है) अर्थात् वह दोनों अंतों से परे हो जाता है।

50. हे धीर! (तू) (विषमता के) प्रतिफल और आधार का निर्णय कर। (तथा) (उसका) छेदन करके कर्मों रहित (अवस्था) का अर्थात् समता का देखने वाला (बन)।

51 लोगंसि परमदंसी विवित्तजीवी उवसंते समिते सहिते सदा जते कालकंखी परिव्वए ।

52 सच्चंसि धितिं कुव्वह । एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावं कम्मं झोसेति ।

53 अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहइ पूरइत्तए ।

54 णिस्सारं पासिय णाणी ।
उववायं चयणं णच्चा अणण्णं चर माहणे ।
से ण छणे, न छणावए, छणंतं णाणुजाणति ।

55 कोधादिमाणं हणिया य वीरे, लोभस्स पासे णिरयं महंतं ।

51. (जो) लोक में परम-तत्त्व को देखने वाला है, (वह) (वहाँ) विवेक-युक्त जीने वाला (होता है), तनाव-मुक्त (होता है), समतावान् (होता है), कल्याण करने वाला (होता है), सदा जितेन्द्रिय (होता है), (कार्यों के लिए) उचित समय को चाहने वाला (होता है), (तथा) (वह) (अनासक्ति पूर्वक) (वहाँ) गमन करता है।

52. (तुम सब) सत्य में धारणा करो। यहाँ पर (सत्य में) ठहरा हुआ मेधावी (शुद्ध बुद्धि वाला) सब पाप-कर्मों को क्षीण कर देता है।

53. यह मनुष्य सचमुच अनेक चित्तों को (धारण करता है)। (आत्म-दृष्टि के उदय हुए बिना मनुष्य का शान्ति के लिए दावा करना ऐसे ही है जैसे कि) वह चलनी को (पानी से) भरने के लिए दावा करता है। [जैसे चलनी को पानी से भरा नहीं जा सकता है, उसी प्रकार चित्त-भूमि पर तनाव-मुक्ति संभव नहीं है]।

54. हे ज्ञानी! संसार को निस्सार देखकर (तू समझ)। हे अहिंसक! (दुःख पूर्ण) जन्म-मरण को जानकर समता का आचरण कर।
वह न हिंसा करता है, न हिंसा कराता है, (और) न हिंसा करते हुए का अनुमोदन करता है।

55. क्रोध आदि को (तथा) अहंकार को सर्वथा नष्ट करके वीर प्रचण्ड नरक (मय) लोभ को (दृष्टाभाव से) देखता है, इसलिए ही (कषायों का भार हटने के कारण) हलका होकर

तम्हा हि वीरे विरते वधातो, छिंदिज्ज सोतं लहुभूयगामी।

56 गंथं परिण्णाय इहऽज्ज वीरे, सोयं परिण्णाय चरेज्ज दंते।
उम्मुग्ग लद्धु इह माणवेहि, णो पाणिणं पाणे समारभे-
ज्जासि।

57 समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसादए।
अणण्णपरमं णाणी णो पमादे कयाइ वि।
आतगुत्ते सदा वीरे जातामाताए जावए।
विरागं रूवेहि गच्छेज्जा महता खुड्डएहि वा।
आगतिं गतिं परिण्णाय दोहि वि अंतेहि अदिस्समाणेहि से ण
छिज्जति, ण भिज्जति, ण डज्झति, ण हम्मति कंचणं
सव्वलोए।

58 अवरेण पुव्वं ण सरंति एगे किमस्स तीतं किं वाऽऽगमिस्सं।
भासंति एगे इह माणवा तु जमस्स तीतं तं आगमिस्सं।

गमन करने वाला वीर हिंसा से मुक्त हुआ (संसार) प्रवाह को नष्ट कर देता है।

56. परिग्रह को (दृष्टाभाव से) जानकर (तथा) (संसार)-प्रवाह को (भी) (दृष्टाभाव से) जानकर वीर यहाँ आज (ही) आत्म-नियन्त्रित (होकर) व्यवहार करे। (अतः) (तू) मनुष्य होने के कारण (संसार-सागर से) बाहर निकलने के (अवसर को) प्राप्त करके यहाँ प्राणियों के प्राणों की हिंसा मत कर।

57. वहाँ (जीवन में) समता को मन में धारण करके (व्यक्ति) स्वयं को प्रसन्न करे।
अद्वितीय परम-(तत्व) के प्रति ज्ञानी कभी भी प्रमाद न करे। वीर सदा आत्मा से संयुक्त (रहे) (तथा) केवल (संयम)-यात्रा के लिए शरीर का प्रतिपालन करे।
(वह) बड़े और छोटे रूपों में विरक्ति करे।
(जो) (संसार में) आने और (संसार से) जाने को (दृष्टा-भाव से) जानकर (लोक में विचरण करता है), (जो) दोनों ही अन्तों द्वारा समझा जाता हुआ (समझा जाने वाला) नहीं होने के कारण (द्वन्द से परे रहता है), वह लोक में कहीं भी (किसी के द्वारा) न छेदा जाता है, न भेदा जाता है, न जलाया जाता है, (तथा) न मारा जाता है।

58. कुछ लोग भविष्य के (साथ-साथ) पूर्वागामी (अतीत) को मन में नहीं लाते हैं, इसका अतीत क्या (था)? और इसका भविष्य क्या (होगा)?

णातीतमट्ठं ण य आगमिस्सं अट्ठं णियच्छंति तथागता उ ।
विधूतकप्पे एताणुपस्सी णिज्झोसइत्ता ।

59 पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ?
जं जाणेज्जा उच्चालयितं तं जाणेज्जा दूरालयितं, जं जाणेज्जा दूरालइतं तं जाणेज्जा उच्चालयितं ।

60 पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

61 पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेधावी सारं तरति ।
सहिते धम्ममादाय सेयं समणुपस्सति ।
सहिते दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए ।

किन्तु कुछ मनुष्य यहाँ कहते हैं (कि) इसका जो अतीत (था) वह (ही) (इसका) भविष्य (होगा)।
इसके विपरीत वीतराग न अतीत के प्रयोजन को तथा न भविष्य के (ही) प्रयोजन को देखते हैं।
अब (वर्तमान) का देखने वाला सम्यक्स्पृष्ट (समतामयी) आचरण के द्वारा कर्मों का नाश करने वाला (होता है)।

59. हे मनुष्य ! तू ही तेरा मित्र (है), (तू) बाहर की ओर मित्र की तलाश क्यों करता है ?
जिसे (तुम) ऊँचे (आध्यात्मिक मूल्यों) में जमा हुआ जानो, उसे (तुम) (आसक्ति से) दूरी पर जमा हुआ जानो, जिसे (तुम) (आसक्ति से) दूरी पर जमा हुआ जान लो, उसे (तुम) ऊँचे (आध्यात्मिक मूल्यों) में जमा हुआ जानों।

60. हे मनुष्य ! (तू) (अपने) मन को ही रोककर (जी)। इस प्रकार (तू) दुखों से छूट जायगा।

61. हे मनुष्य ! (तू) सत्य का ही निर्णय कर। (जो) सत्य की आज्ञा में उपस्थित (है), वह मेधावी मृत्यु को जीत लेता है।
सुन्दर चित्तवाला (संयम-युक्त) (व्यक्ति) धर्म (अध्यात्म) को ग्रहण करके श्रेष्ठतम को भलिभाँति देखता (अनुभव करता) है।
दुःख की मात्रा से ग्रस्त (व्यक्ति) (जो) सुन्दर चित्तवाला (संयम-युक्त) (है) व्याकुलता में नहीं (फँसता है)।

62 जे एगं जाणति से सव्वं जाणति, जे सव्वं जाणति से एगं जाणति ।

सव्वतो पमत्तस्स भयं, सव्वतो अप्पमत्तस्स णत्थि भयं। जे एगणामे से बहुणामे, जे बहुणामे से एगणामे ।

दुक्खं लोगस्स जाणित्ता, वंता लोगस्स संजोगं, जंति वीरा महाजाणं ।

परेण परं जंति, णावकंखंति जीवितं ।

एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ, पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ सड्ढी आणाए मेधावी ।

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ।

अत्थि सत्थं परेण परं, णत्थि असत्थं परेण परं ।

62. जो अनुपम (आत्मा) को जानता है, वह सब (विषमताओं) को जानता है; जो सब (विषमताओं) को जानता है, वह अनुपम (आत्मा) को जानता है।

प्रमादी (विषमताधारी) के लिए सब ओर से भय (होता है), अप्रमादी (समताधारी) के लिए किसी ओर से भय नहीं (होता है)।

जो एक (मोह) को झुकाता है, वह बहुत (कषायों) को झुकाता है। जो बहुत (कषायों) को झुकाता है, वह एक (मोह) को झुका देता है।

प्राणी-समूह के दुःख को जानकर (तू) (समता का आचरण कर), संसार के प्रति ममत्व को (मन से) बाहर निकाल कर वीर समता रूपी महापथ पर चलते हैं।

वे आगे से आगे चलते जाते हैं, (और) (आसक्ति-युक्त) जीवन को नहीं चाहते हैं।

केवल मात्र (हिंसा-दोष) को दूर हटाता हुआ (व्यक्ति) एक-एक करके (दूसरे दोषों को) दूर हटा देता है। एक-एक करके (दूसरे दोषों को) दूर हटाता हुआ (व्यक्ति), केवल मात्र (हिंसा-दोष) को (ही) दूर हटा देता है। (अहिंसा-समता धर्म की) आज्ञा (सलाह) में श्रद्धा रखने वाला शुद्ध बुद्धि वाला (होता है)।

प्राणी-समूह को ही (समतादर्शी) की आज्ञा से जानकर (जो) (व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है) (वह) निर्भय (हो जाता है)।

शस्त्र तेज से तेज होता है, अशस्त्र तेज से तेज नहीं (होता है) [हिंसा तीव्र से तीव्र होती है, अहिंसा सरल होती है]

63 किमत्थि उवधी पासगस्स, ण विज्जति ? णत्थि त्ति बेमि ।

64 सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेतव्वा, ण परिघेत्तव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा ।
एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए समेच्च लोयं खेतण्णेहिं पवेदिते ।

65 णो लोगस्सेसणं चरे ।

66 णाऽणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि ।
इच्छापणीता वंकाणिकेया कालग्गहीता णिचये णिविट्ठा पुढो पुढो जाइं पकप्पेंति ।

67 इह आणाकंखी पंडिते अणिहे एगमप्पाणं सपेहाए धुणे सरीरं, कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं । जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्ववाहो

63. क्या दृष्टा का (कोई) नाम है (या) नहीं है ? नहीं है, इस प्रकार मैं कहता हूँ ।

64. कोई भी प्राणी, कोई भी जन्तु, कोई भी जीव, कोई भी प्राणवान् मारा नहीं जाना चाहिए, शासित नहीं किया जाना चाहिए, गुलाम नहीं बनाया जाना चाहिए, सताया नहीं जाना चाहिए, (और) अशान्त नहीं किया जाना चाहिए । यह (अहिंसा) धर्म शुद्ध (है), नित्य (है), (और) शाश्वत (है), (यह धर्म) जीव-समूह को जानकर कुशल (व्यक्तियों) द्वारा कथित (है) ।

65. (मूल्यों का साधक) लोक के द्वारा (प्रशंसित होने के लिए) इच्छा न करे ।

56. (व्यक्तियों के लिए) मृत्यु के मुख में न आना नहीं है (अर्थात् मृत्यु के मुख में आना अवश्यंभावी है), (फिर भी) (वे) इच्छाओं द्वारा (ही) (कार्यों में) उपस्थित (होते हैं), (वे) (ऐसे हैं) (जिनके) (मनरूपी) घर कुटिल (होते हैं) (यद्यपि) वे मृत्यु के द्वारा पकड़े हुए (हैं), (फिर भी) (वे) संग्रह-में आसक्त (होते हैं) । (अतः) (वे) अलग-अलग (प्रकार के) जन्म को धारण करते हैं ।

67. हे (समतादर्शी की) आज्ञा (पालन) के इच्छुक, बुद्धिमान् (व्यक्ति) ! (तू) यहाँ अनासक्त (हो जा), अनुपम आत्मा को ही देखकर (कर्म)-शरीर को दूर हटा, अपने को नियन्त्रित कर (और) आत्मा में घुल जा ।

पमत्थति एवं अत्तसमाहिते अणिहे ।

68 णेत्तेहिं पलिछिण्णेहिं आताणसोतगढिते बाले अव्वोच्छिण्ण-बंधणे अणभिक्कंतसंजोए ।
तमंसि अविजाणओ आणाए लंभो णत्थि त्ति बेमि ।

69 संसयं परिजाणतो संसारे परिण्णाते भवति, संसयं अपरि-जाणतो संसारे अपरिण्णाते भवति ।

70 उट्ठिते णो पमादए ।

71 से पुव्वं पेतं पच्छा पेतं भेउरधम्मं विद्धंसणधम्मं अधुवं

जैसे अग्नि जीर्ण (सूखी) लड़कियों को नष्ट कर देती है, इसी प्रकार आत्मा में लीन, अनासक्त (व्यक्ति) (राग-द्वेष को नष्ट कर देता है)।

68. (जो) परिसिमित (संयमित) नेत्रों (इन्द्रियों) के होने पर (भी) इन्द्रियों के प्रवाह में आसक्त (हो जाता है), (वह) अज्ञानी (होता है)। (इसके फलस्वरूप) (उसके) कर्म बन्धन बिना टूटे हुए (रहते हैं) (और) (उसके) (विभाव) संयोग बिना नष्ट हुए (रहते हैं)।

(इन्द्रिय विषयों में रमने की आदत के वशीभूत होकर) (धीरे धीरे) (वह) अन्धकार (इन्द्रिय आसक्ति) के प्रति अनजान (होता जाता है)। (ऐसे व्यक्ति के लिए) (समता-दर्शी के) उपदेश का (कोई) लाभ नहीं (होता है)। इस प्रकार मैं कहता हूँ।

69. (संसार के विषय में) संशय को समझने से संसार जाना हुआ (होता है), (संसार के विषय में) संशय को नहीं समझने से संसार जाना हुआ नहीं होता।

70. (जो) प्रमाद (विषमता) नहीं करता है, (वह) (समता में) प्रगति किया हुआ (होता है)।

71. (तुम) इस देह-संगम को देखो। (यह) (किसी के) पहले छूटा (या) (किसी के) बाद में छूटा (किन्तु यह छूटता अवश्य है)। (इसका) (तो) नश्वर स्वभाव (है), (इसका) (तो) स्वभाव विनाश (मय) (है), यह अध्रुव (है), अनित्य

अणितियं असासतं चयोवचइयं विप्परिणामधम्मं । पासह एयं रूवसंधि ।

72 से सुतं च मे अज्झत्थं च मे— बंधपमोक्खो तुज्झऽज्झत्थेव ।

73 समियाए धम्मे आरिएहिं पवेदिते ।

74 इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झतो ? जुद्धारिहं खलु दुल्लभं :

75 उण्णतमाणे य णरे महता मोहेण मुज्झति ।

76 वितिगिछसमावन्नेणं अप्पाणेणं णो लभति समाधि ।

77 से उट्ठितस्स ठितस्स गतिं समणुपासह ।
एत्थ वि बालभावे अप्पाणं णो उवदंसेज्जा ।

78 तुमं सि णाम तं चेव जं हंतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं अज्जावेतव्वं ति मण्णसि,

(है), अशाश्वत (है), बढ़ने (वाला) और क्षय वाला है, (तथा) परिणमन (इसका) स्वभाव (है)।

72. मेरे द्वारा (यह) सुना गया (है) और मेरे द्वारा आत्म-संबंधी (यह ज्ञान प्राप्त किया गया है) कि वंध (अशान्ति) और मोक्ष (शान्ति) तेरे (अपने) मन में ही (होता है)/ (होती है)।

73. तीर्थंकरों द्वारा समता में धर्म कहा गया (है)।

74. इस (मानसिक विषमता) के साथ ही युद्ध कर, तुम्हारे लिए वाहर (व्यक्तियों) से युद्ध करने से क्या लाभ ? (विषमता के साथ) युद्ध करने के योग्य (होना) निश्चय ही दुर्लभ (है)।

75. उत्थान का अहंकार होने पर ही मनुष्य तीव्र मोह के कारण मूढ बन जाता है।

76. (अपने) मन में (अध्यात्म के प्रति) ग्रहण किए हुए संदेह के कारण (मनुष्य) समाधि (अवस्था) को प्राप्त नहीं कर पाता है।

77. (अध्यात्म में) प्रगति किए हुए (और) दृढ़ता-पूर्वक (उसमें) लगे हुए (व्यक्ति) की अवस्था को (तुम) देखो। (और) (इसलिए) यहाँ अपने को मोहित (मूर्च्छित) अवस्था में बिल्कुल मत दिखलाओ।

78. देख ! निस्संदेह तू वह ही है जिसको (तू) मारे जाने योग्य मानता है।

तुमं सि णाम तं चेव जं परितावेतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं परिघेतव्वं ति मण्णसि,
एवं तं चेव जं उद्दवेतव्वं ति मण्णसि ।
अंजू चेयं पडिबुद्धजीवी । तम्हा ण हंता, ण वि घातए
अणुसंवेयणमप्पाणेणं, जं हंतव्वं णाभिपत्थए ।

79 जे आता से विण्णाता, जे विण्णाता से आता । जेण विजाणति से आता । तं पडुच्च पडिसंखाए । एस आतावादी समियाए परियाए वियाहिते त्ति बेमि ।

80 अणाणाए एगे सोवट्ठाणा, आणाए एगे णिरुवट्ठाणा । एतं ते मा होतु ।

देख ! निस्सन्देह तू वह ही है जिसको (तू) शासित किए जाने योग्य मानता है।

देख ! निस्सन्देह तू वह ही है जिसको (तू) सताए जाने योग्य मानता है।

देख ! निस्सन्देह तू वह ही है जिसको (तू) गुलाम बनाए जाने योग्य मानता है।

इसी प्रकार (देख !) (निस्सन्देह) (तू) वह ही (है) जिसको (तू) अशान्त किए जाने योग्य मानता है।

जागरूक (होकर) ही जीने वाला (व्यक्ति) सरल (होता है)। इसलिए (वह) (स्वयं) न हिंसा करने वाला (होता है) और न ही (वह) दूसरों से हिंसा करवाता है। अपने द्वारा (किए हुए कर्मों को) अपने को भोगना (पड़ता है), (इसलिए) जिसको (तू) (किसी भी कारण से) मारे जाने योग्य (मानता है), (उसकी) (तू) इच्छा मत कर।

79. जो आत्मा (है), वह जानने वाला (है), जो जानने वाला (है) वह आत्मा (है)। जिससे (मनुष्य) जानता है, वह आत्मा (है)। उसको आधार बनाकर (ही) (प्रत्येक व्यक्ति) (आत्मा शब्द का) व्यवहार करता है। यह आत्मवादी समता का रूपान्तरण कहा गया (है)। इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

80. (आश्चर्य !) कुछ लोग (समतादर्शी की) अनाज्ञा में (भी) तत्परता सहित (होते हैं), कुछ लोग (समतादर्शी की) आज्ञा में (भी) आलसी (होते हैं)। यह तुम्हारे लिए न होवे।

81 सव्वे सरा नियट्टंति,
तक्का जत्थ ण विज्जति,
मती तत्थ ण गाहिया ।
ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेत्तण्णे ।
से ण दीहे, ण ह्रस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे,
ण परिमंडले, ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिते, ण हालिद्दे,
ण सुक्किले, ण सुरभिगंधे, ण दुरभिगंधे, ण तित्ते,
ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे,
ण मउए, ण गरुए, ण लहुए, ण सीए, ण उण्हे,
ण णिद्धे, ण लुक्खे, ण काऊ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थी,
ण पुरिसे, ण अण्णहा ।
परिण्णे, सण्णे ।
उवमा ण विज्जति ।
अरूवी सत्ता ।
अपदस्स पदं णत्थि ।

81. (आत्मानुभव की सर्वोच्च अवस्था का वर्णन करने में) सब शब्द लौट आते हैं (तथा) जिसके (आत्मानुभव के) विषय में कोई तर्क (कार्यकारी) नहीं (होता है)। बुद्धि उसके विषय में (कुछ भी) पकड़ने वाली नहीं (होती है)।

(वह) (अवस्था) आभा-(मयी) (होती है), (वह) किसी ठिकाने पर नहीं (होती है), (वह) (केवल) ज्ञाता-दृष्टा (अवस्था) (होती है)।

(वह) (अवस्था) न बड़ी (है), न छोटी (है), न गोल (है), न त्रिकोण (है) न चतुष्कोण (है) और न परिमण्डल (है)। (वह) न काली (है), न नीली (है), न लाल (है), न पीली (है); (और) न सफेद (है)।

(वह) न सुगन्धमयी (है) (और) न दुर्गन्धमयी (है)।

(वह) न तीखी (है), न कडुवी (है), न कषैली (है), न खट्टी (है), (और) न मीठी (है)।

(वह) न कठोर (है), न कोमल (है), न भारी (है), न हलकी (है), न ठण्डी (है), न गर्म (है), न चिकनी (है) (और) न रूखी (है)।

(वह) न लेश्यावान् (है), (वह) न उत्पन्न होने वाली (है), उसके (वहाँ) (कोई) आसक्ति नहीं (है)।

(वह) न स्त्री (है), न पुरुष और न इसके विपरीत (न नपुंसक)।

(वह) (शुद्ध आत्मा) ज्ञाता (है), अमूर्च्छित (होश में आया हुआ) (है)।

(उसके लिए) (कोई) तुलना नहीं (है)। (वह) एक अमू-

से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे, इच्चेतावंति त्ति बेमि।

82 संति पाणा अंधा तमंसि वियाहिता।
पाणा पाणे किलेसंति।
बहुदुक्खा हु जंतवो।
सत्ता कामेहिं माणवा। अबलेण वहं गच्छंति सरीरेण पभंगुरेण।

83 आणाए मामगं धम्मं।

84 जहा से दीवे असंदीणे एवं

तिक सत्ता (है)। (उस) पदातीत के लिए (कोई) नाम नहीं (है)।

(वह) (शुद्ध आत्मा) न शब्द (है), न रूप (है), न गंध (है), न रस (है), न स्पर्श (है)।

बस इतने ही (वर्णनों को) (तुम) (जानलो) (काफी है)। इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

82. (जो) प्राणी (मूर्च्छारूपी) अंधकार में रहते हैं (वे) अन्धं (ज्ञान रहित) कहे गए (हैं)। प्राणी प्राणियों को दुःख देते हैं। निस्सन्देह प्राणी बहुत दुःखी (है)। मनुष्य इच्छाओं में आसक्त होते हैं। (इसलिए) निर्बल और अत्यन्त नाशवान् शरीर के होने पर (भी) (मनुष्य) (इच्छाओं की पूर्ति के लिए) (प्राणियों की) हिंसा करते हैं।

83. (आध्यात्मिक रहस्यों में प्रगति के लिए) (समतादर्शी की) आज्ञा में (चलना) मेरा कर्त्तव्य (है)।

या

मेरे धर्म को (जानकर) (ही) (तुम) (मेरी) आज्ञा को (मानो)।

या

मेरा (समतादर्शी का) धर्म (समतादर्शी की) (मेरी) आज्ञा में (ही निहित है)।

84. जैसे असंदीन (पानी में न डूबा हुआ) द्वीप (कष्ट में फँसे हुए समुद्र-यात्रियों के लिए) आश्रय (होता है), इसी प्रकार

से धम्मे आरियपदेसिए ।

85 दयं लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं आइक्खे विभए किट्टे वेदवी ।

86 गामे अदुवा रण्णे, णेव गामे णेव रण्णे, धम्ममायाणह पवेदितं माहणेण मतिमया ।

87 अहासुतं वदिस्सामि जहा से समणे भगवं उट्ठाय ।
संखाए तंसि हेमंते अहुणा पव्वइए रीइत्था ।।

88 अदु पोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज अंतसो झाति ।
अह चक्खुभीतसहिया ते हंता हंता बहवे कंदिसु ।।

89 जे केयिमे अगारत्था मीसीभावं पहाय से झाति ।

समतादर्शी के द्वारा प्रतिपादित धर्म (दुःख में फँसे हुए प्राणियों के लिए आश्रय होता है)।

85. जीव-समूह की दया को समझकर ज्ञानी पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशा में (सब स्थानों पर) (उसका) उपदेश दे, (उसको) वितरित करे (तथा) (उसकी) प्रशंसा करे।

86. धर्म गाँव में (होता है) अथवा जंगल में? (वह) न ही गाँव में (होता है), न ही जंगल में। (धर्म तो आत्म-जागृति है)। प्रज्ञावान् अहिंसक (महावीर) के द्वारा (इस) प्रतिपादित धर्म को (तुम) समझो।

87. जैसा कि सुना है, मैं कहूँगा। (आत्म-स्वरूप) को जानकर श्रमण भगवान् उस हेमन्त (ऋतु) में (सांसारिक परतन्त्रता को) त्यागकर दीक्षित हुए और वे इस समय (ही) विहार कर गए।

88. अब (महावीर) तिरछी भीत पर प्रहर (तीन घंटे की अवधि) तक (पलक न झपकाई हुई) आँखों को लगाकर आन्तरिक रूप से ध्यान करते थे। तब (उन असाधारण) आँखों के डर से युक्त वे (बे-समझ लोग) यहाँ आओ! देखो! (कहकर) बहुत लोगों को पुकारते थे।

89. यदि कभी (महावीर) घर में रहने वाले से (युक्त) (स्थान) (पर ठहरते थे), (तो) वे (वहाँ उनसे) मेल-जोल के विचार को छोड़कर ध्यान करते थे। (यदि) (उनसे कभी कोई बात) पूछी गई (होती थी) (तो) भी (वे) बोलते नहीं

पुट्ठो वि णाभिभासिसु गच्छति णाइवत्तती अंजू ।।

90 फरिसाइं दुत्तितिक्खाइं अतिअच्च मुणी परक्कममाणे ।
आघात–णट्ट–गीताइं दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं ।।

91 गढिए मिहुकहासु समयम्मि णातसुते विसोगे अदक्खु ।
एताइं से उरालाइं गच्छति णायपुत्ते असरणाए ।।

92 पुढविं च आउकायं च तेउकायं च वायुकायं च ।
पणगाइं बीयहरियाइं तसकायं च सव्वसो णच्चा ।।

93 एताइं संति पडिलेहे चित्तमंताइं से अभिण्णाय ।
परिवज्जियाण विहरित्था इति संखाए से महावीरे ।।

94 मातण्णे असणपाणस्स णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे ।
अच्छिं पि णो पमज्जिया णो वि य कंडुयए मुणी गातं ।।

(थे), (कोई बाधा उपस्थित होने पर) (वे) (वहाँ से) चले जाते थे, (वे) (सदैव) संयम में तत्पर (होते थे) (और) (वे) (कभी) (ध्यान की) उपेक्षा नहीं (करते थे)।

90. दुस्सह कटु वचनों की अवहेलना करके मुनि (महावीर) (आत्म-ध्यान में) (ही) पुरुषार्थ करते हुए (रहते थे)। (वे) कथा-नाच-गान में (तथा) लाठी-युद्ध (और) मूठी-युद्ध में (समय नहीं बिताते थे)।

91. परस्पर (काम) कथा में तथा (कामातुर) इशारों में आसक्त (व्यक्तियों) को ज्ञात-पुत्र (महावीर) (हर्ष)-शोक रहित देखते थे। वे (ज्ञात-पुत्र) इन मनोहर (बातों) की (उपेक्षा करते थे) (और) (उनका) स्मरण नहीं करते थे।

92. पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, शैवाल, बीज और हरी वनस्पति तथा त्रसकाय को पूर्णतया जानकर (महावीर विहार करते थे)।

93. (ये) चेतनवान् (हैं), उन्होंने देखा। इस प्रकार वे महावीर जानकर (और) समझकर (प्राणियों की हिंसा का) परित्याग करके विहार करते थे।

94. मुनि (महावीर) खाने-पीने की मात्रा को समझने वाले (थे), (भोजन के) रसों में लालायित नहीं होते (थे)। (वे) (भोजन-संबंधी) निश्चय नहीं (करते थे)। (आँख में कुछ गिरने पर) (वे) आँख को भी नहीं पोंछकर (रहते थे) अर्थात् नहीं पोंछते थे और (वे) शरीर को भी खुजलाते नहीं (थे)।

95 अप्पं तिरियं पेहाए अप्पं पिट्ठओ उप्पेहाए।
अप्पं बुइए पडिभाणी पथपेही चरे जतमाणे ।।

96 आवेसण-सभा-पवासु पणियसालासु एगदा वासो।
अदुवा पलियट्ठाणेसु पलालपुंजेसु एगदा वासो ।।

97 आगंतारे आरामागारे नगरे वि एगदा वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा रुक्खमूले वि एगदा वासो ।।

98 एतेहिं मुणी सयणेहिं समणे आसि पतेलस वासे।
राइंदिवं पि जयमाणे अप्पमत्ते समाहिते झाती ।।

99 णिद्दं पि णो पगामाए सेवइया भगवं उट्ठाए।
जग्गावतीय अप्पाणं ईसिं साईय अपडिण्णे ।।

95. मार्ग को देखने वाले (महावीर) तिरछे (दाएँ-बाएँ) देखकर नहीं (चलते थे), पीछे की ओर देखकर नहीं (चलते थे), (किसी के द्वारा) संबोधित किए गए होने पर (वे) उत्तर देने वाले नहीं (होते थे)। (इस तरह से) (वे) सावधानी बरतते हुए गमन करते थे।

96. (महावीर का) कभी शून्य घरों में, सभा भवनों में, प्याउओं में, दुकानों में रहना (होता था)। अथवा (उनका) कभी (लुहार, सुनार, कुम्हार आदि के) कर्म स्थानों में (और) घास-समूह में (छान के नीचे) ठहरना (होता था)।

97. (महावीर का) कभी मुसाफिरखाने में, (कभी) बगीचे में (बने हुए) स्थान में (तथा) (कभी) नगर में भी रहना होता था)। तथा (उनका) कभी मसाण में, (कभी) सूने घर में (और) (कभी) पेड़ के नीचे के भाग में भी रहना (होता था)।

98. इन (उपर्युक्त) स्थानों में मुनि (महावीर) (चल रहे) तेरहवें वर्ष में (साड़े बारह वर्ष-पन्द्रह दिनों में) समता-युक्त मन वाले रहे। (वे) रात-दिन ही (संयम में) सावधानी बरतते हुए अप्रमाद-युक्त (और) एकाग्र (अवस्था) में ध्यान करते थे।

99. भगवान् (महावीर) आनन्द के लिए कभी भी नींद का उपभोग नहीं करते थे। और (नींद आती तो) ठीक उसी समय अपने को खड़ा करके जगा लेते थे। (वे) (वास्तव में) थोड़ा सा लेटने वाले (थे) और (वह भी) (नींद की) इच्छा रखकर (लेटने वाले) नहीं (थे)।

100 संबुज्झमाणे पुणरवि आसिसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगया राओ बहिं चक्कमिया मुहुत्तागं ।।

101 सयणेहिं तस्सुवसग्गा भीमा आसी अणेगरूवा य।
संसप्पगा य जे पाणा अदुवा पक्खिणो उवचरंति ।।

102 इहलोइयाइं परलोइयाइं भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भिदुब्भिगंधाइं सद्दाइं अणेगरूवाइं ।।

103 अधियासए सया समिते फासाइं विरूवरूवाइं।
अरतिं रतिं अभिभूय रीयति माहणे अबहुवादी ।।

104 लाढेहिं तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लूसिसु।
अह लूहदेसिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिसु णिवतिसु।

100. कभी-कभी रात में (जब नींद सताती तो) भगवान् (महावीर) (आवास से) बाहर निकलकर कुछ समय तक बाहर इधर-उधर घूमकर फिर सक्रिय होकर पूर्णतः जागते हुए (ध्यान में) बैठ जाते थे।

101. उनके लिए (महावीर के लिए) (उन) स्थानों में नाना प्रकार के भयानक कष्ट भी वर्तमान थे। (वहाँ) जो भी चलने फिरने वाले जीव (थे) और (वहाँ) जो (भी) पंख-युक्त (जीव थे) (वे) (वहाँ) (उन पर) उपद्रव करते थे।

102. (महावीर ने) इस लोक संबंधी और परलोक संबंधी (अलौकिक) नाना प्रकार के भयानक (कष्टों) को (समतापूर्वक सहन किया)। (वे) अनेक प्रकार के रुचिकर और अरुचिकर गंधों में तथा शब्दों में (राग-द्वेष-रहित रहे)।

103. अहिंसक (और) बहुत न बोलने वाले (महावीर) ने अनेक प्रकार के कष्टों को शान्ति से झेला (और) (उनमें) (वे) सदा समतायुक्त (रहे)। (विभिन्न परिस्थितियों में) हर्ष (और) शोक पर विजय प्राप्त करके (वे) गमन करते रहे।

104. लाढ़ देश में रहने वाले लोगों ने उनके (महावीर के) लिए बहुत कष्ट (पैदा किए) (और) (उनको) हैरान किया। (लाढ़ देश के) निवासी रूखे (थे), उसी तरह (उनके द्वारा) पकाया हुआ भोजन (भी रूखा होता था)। कुत्ते (कूकरे) वहाँ पर (महावीर को) संताप देते थे (और) उन पर टूट पड़ते थे।

105 अप्पे जणे णिवारेति लूसणए सुणए डसमाणे ।
छुच्छुक्कारेंति आहंतु समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति ।।
[छुच्छुकरेंति आहंसु समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति][1] ।।

106 हतपुव्वो तत्थ डंडेण अदुवा मुट्ठिणा अदु फलेणं ।
अदु लेलुणा कवालेणं हंता हंता वहवे कंदिसु ।।

107 सूरो संगामसीसे वा संवुडे तत्थ से महावीरे ।
पडिसेवमाणो फरूसाइं अचले भगवं रीयित्था ।।

108 अवि साहिए दुवे मासे छप्पि मासे अदुवा अपिवित्था ।
राओवरातं अपडिण्णे अण्णगिलायमेगता भुंजे ।।

109 छट्ठेण एगया भुंजे अदुवा अट्ठमेण दसमेण ।
दुवालसमेण एगदा भुंजे पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ।।

---

[1]आयारंग-सुत्तं (श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई), पृष्ठ 413 col. 2 पृ. 97

105. (वहाँ पर) कुछ ही लोग (ऐसे थे) (जो) काटते हुए कुत्तों को (और) हैरान करने वाले (मनुष्यों) को दूर हटाते थे। (किन्तु बहुत लोग) छु-छु की आवाज करते थे (और) कुत्तों को बुला लेते थे, (फिर उनको) महावीर के (पीछे) (लगा देते थे), जिससे (वे) थक जाएँ (और वहाँ से चले जाएँ)।

106. (कुछ लोगों द्वारा) वहाँ (महावीर पर) लाठी से अथवा मुक्के से अथवा चाकू, तलवार, भाला आदि से अथवा ईंट, पत्थर आदि के टुकड़े से, (अथवा) ठीकरे से पहले प्रहार किया गया (होता था), (बाद में) (वे ही कुछ लोग) आओ! देखो! (कहकर) बहुतों को पुकारते थे।

107. जैसे (कवच से) ढका हुआ योद्धा संग्राम के मोर्चे पर (रहता है), (वैसे ही) वे महावीर वहाँ (लाढ़ देश में) कठोर (यातनाओं) को सहते हुए (आत्म-नियन्त्रित रहे) (और) (वे) भगवान (महावीर) अस्थिरता-रहित (बिना डिगे) विहार करते थे।

108. दो मास से अधिक अथवा छः मास तक भी (वे) (कुछ) नहीं पीते थे। रात में और दिन में (वे) सदैव राग-द्वेष-रहित (समतायुक्त) (रहे)। कभी कभी (उन्होंने) वासी (तन्द्रालु) भोजन भी खाया।

109. कभी (वे) दो दिन के उपवास के बाद में, तीन दिन के उपवास के बाद में, अथवा चार दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे। कभी (वे) पाँच दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे। (वे) समाधि को देखते हुए निष्काम (थे)।

110 णच्चाण से महावीरे णो वि य पावगं सयमकासी ।
अण्णेहिं वि ण कारित्था कीरंतं पि णाणुजाणित्था ।।

111 गामं पविस्स णगरं वा घासमेसे कडं परट्ठाए ।
सुविसुद्धमेसिया भगवं आयतजोगताए सेवित्था ।।

112 अकसायी विगतगेही य सद्द-रूवेसऽमुच्छिते झाती ।
छउमत्थे वि विप्परक्कममाणे ण पमायं सइं पि कुव्वित्था ।।

113 सयमेव अभिसमागम्म आयतजोगमायसोहीए ।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले आवकहं भगवं समितासी ।।

□□

110. वे महावीर (आत्म-स्वरूप को) जानकर स्वयं भी बिल्कुल पाप नहीं करते थे (तथा) दूसरों से भी पाप नहीं करवाते थे (और) किए जाते हुए (पाप का) अनुमोदन भी नहीं करते थे।

111. गाँव या नगर में प्रवेश करके [भगवान् (महावीर)] (वहाँ) दूसरों के लिए (गृहस्थ के लिए) बने हुए आहार की ही भिक्षा ग्रहण करते थे। (इस तरह) सुविशुद्ध आहार की भिक्षा ग्रहण करके (वे) संयत (समतायुक्त) योगत्व से (उसको) उपयोग में लाते थे।

112. महावीर कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ)-रहित (थे), (उनके द्वारा) लोलुपता नष्ट करदी गई (थी), (वे) शब्दों (तथा) रूपों में अनासक्त (थे) और ध्यान करते थे। (जब वे असर्वज्ञ (थे), (तब) भी उन्होंने साहस के साथ (संयम पालन) करते हुए एक बार भी प्रमाद नहीं किया।

113. आत्म-शुद्धि के द्वारा संयत प्रवृत्ति को स्वयं ही प्राप्त करके भगवान् शान्त (और) सरल (बने)। (वे) जीवन-पर्यन्त समतायक्त रहे।

□□

संकेत-सूची

(अ)	=	अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)
अक	=	अकर्मक क्रिया
अनि	=	अनियमित
आज्ञा	=	आज्ञा
कर्म	=	कर्मवाच्य
(क्रिविअ)	=	क्रिया विशेषण अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)
तुवि	=	तुलनात्मक विशेषण
पु	=	पुल्लिग
प्रे	=	प्रेरणार्थक क्रिया
भक	=	भविष्य कृदन्त
भवि	=	भविष्यत्काल
भाव	=	भाववाच्य
भू	=	भूतकाल
भूकृ	=	भूतकालिक कृदन्त
व	=	वर्तमानकाल
वकृ	=	वर्तमान कृदन्त
वि	=	विशेषण
विधि	=	विधि
विधिकृ	=	विधि कृदन्त
स	=	सर्वनाम
संकृ	=	सम्बन्ध कृदन्त
सक	=	सकर्मक क्रिया
सवि	=	सर्वनाम विशेषण
स्त्री	=	स्त्रीलिंग
हेकृ	=	हेत्वर्थ कृदन्त
( )	=	इस प्रकार के कोष्टक में मूल शब्द रक्खा गया है।

[( )+( )+( )........]
इस प्रकार के कोष्टक के अन्दर + चिह्न किन्हीं शब्दों में संधि का द्योतक है। यहाँ अन्दर के कोष्टकों में गाथा के शब्द ही रख दिये गये हैं।

[( )-( )-( )........]
इस प्रकार के कोष्टक के अन्दर '-' चिह्न समास का द्योतक है।

• जहाँ कोष्टक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1........आदि) ही लिखी है, वहाँ उस कोष्टक के अन्दर का शब्द 'संज्ञा' है।

• जहाँ कर्मवाच्य, कृदन्त आदि प्राकृत के नियमानुसार नहीं बने हैं, वहाँ कोष्टक के बाहर 'अनि' भी लिखा गया है।

1/2 अक या सक=उत्तम पुरुष/एक वचन
1/2 अक या सक=उत्तम पुरुष/बहुवचन
2/1 अक या सक=मध्यम पुरुष/एक वचन
2/2 अक या सक=मध्यम पुरुष/बहुवचन
3/1 अक या सक=अन्य पुरुष/एक वचन
3/2 अक या सक=अन्य पुरुष/बहुवचन

1/1 = प्रथमा/एकवचन
1/2 = प्रथमा/बहुवचन
2/1 = द्वितीया/एकवचन
2/2 = द्वितीया/बहुवचन
3/1 = तृतीया/एकवचन
3/2 = तृतीया/बहुवचन
4/1 = चतुर्थी/एकवचन
4/2 = चतुर्थी/बहुवचन
5/1 = पंचमी/एकवचन
5/2 = पंचमी/बहुवचन
6/1 = षष्ठी/एकवचन
6/2 = षष्ठी/बहुवचन
7/1 = सप्तमी/एकवचन
7/2 = सप्तमी/बहुवचन
8/1 = संबोधन/एकवचन
8/2 = संबोधन/बहुवचन

व्याकरणिक विश्लेषण

1. सुयं (सुय) भूकृ 1/1 अनि मे (अम्ह) 3/1 स आउसं (आउसं) 8/1 वि अनि तेणं (त) 3/1 स भगवया (भगवया) 3/1 अनि एवमक्खायं [(एवं) + (अक्खायं)] एवं (अ) = इस प्रकार. अक्खायं (अक्खाय) भूकृ 1/1 अनि इहमेगेसिं [(इहं) + (एगेसिं)] इहं (अ) = यहाँ. एगेसिं[1] (एग) 6/2 वि णो (अ) = नहीं सण्णा (सण्णा) 1/1 भवति (भव) व 3/1 अक तं जहा (अ) = जैसे

स्त्री
पुरत्थिमातो (पुरत्थिम ——→ पुरत्थिमा) 5/1 वि वा (अ) = या दिसातो (दिसा) 5/1 आगतो[2] (आगत) भूकृ 1/1 अनि अहमंसि [(अहं) + (अंसि)] अहं (अम्ह) 1/1 स. अंसि (अस) व 1/1 अक

स्त्री
दाहिणाओ (दाहिण ——→ दाहिणा) 5/1 वि पच्चत्थिमातो

स्त्री स्त्री
(पच्चत्थिम ——→ पच्चत्थिमा) 5/1 वि उत्तरातो (उत्तर → उत्तरा)

स्त्री
5/1 वि उड्ढातो (उड्ढ ——→ उड्ढा) 5/1 वि अधे (अ) = नीचे की

तर प्रत्यय स्त्री
अन्नतरीतो[3] (अन्न ————→ अन्नतर ——→ अन्नतरी) 5/2 वि दिसातो (दिसा) 5/2 अणुदिसातो (अणुदिसा) 5/2

1. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-134)
2. 'गति' अर्थ में भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाच्य में भी होता है।
3. निर्धारण अर्थ में 'तर' प्रत्यय होता है (अभिनव प्राकृत व्याकरण : पृष्ठ 429)

एवमेगेसिं [(एवं) + एगेसिं)] एवं (अ)=इसी प्रकार एगेसिं[1] (एग) 6/2 वि णो (अ)=नहीं णातं (णात) 1/1 वि भवति (भव) व 3/1 अक अत्थि (अ)=है मे (अम्ह) 6/1 स आया (आय) 1/1 उववाइए (उववाइअ) 1/1 वि णत्थि (अ)=नहीं के (क) 1/1 सवि अहं (अम्ह) 1/1 स आसी (अस) भू 1/1 अक वा (अ)=या इओ (अ)=इस लोक से चुते (चुत) भूकृ 1/1 अनि पेच्चा (अ)= आगामी जन्म भविस्सामि (भव) भवि 1/1 अक

1. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

2. से ज्जं[1]=से (त) 1/1 सवि पुण (अ)=इसके विपरीत जाणेज्जा (जाण) व 3/1 सक सहसम्मुइयाए [(सह) वि - (सम्मुइ—स्वार्थिक'य'→सम्मुइय—स्त्री→सम्मुइया) 3/1] परवागरणेणं [(पर) वि-(वागरण) 3/1] अण्णेसिं (अण्ण) 6/2 वि वा (अ)=अथवा अंतिए (अंतिअ) 7/1 वि सोच्चा (सोच्चा) संकृ अनि

1. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 623

3. से (त) 1/1 सवि आयावादी [(आया[1])-(वादि) 1/1 वि] लोगावादी [(लोगा[1])-(वादि) 1/1 वि] कम्मावादी [(कम्मा[1])-(वादि) 1/1 वि] किरियावादी [(किरिया)-(वादि) 1/1 वि]

1. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर कभी-कभी दीर्घ हो जाते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-4)

4. अपरिण्णायकम्मे [(अपरिण्णाय) वि-(कम्म) 1/1] खलु (अ)= सचमुच अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस) 1/1 जो (ज) 1/1

सवि इमाओ (इमा) 5/2 सवि दिसाओ (दिसा) 5/2 वा (अ)= या अणुदिसाओ (अणुदिसा) 5/2 अणुसंचरति (अणुसंचर) व 3/1 सक सव्वाओ (सव्वा) 5/2 वि सहेति (सह) व 3/1 सक

स्त्री

अरणेगरूवाओ (अरणेगरूव——→अरणेगरूवा) 5/2 जोणीओ (जोरिण) 5/2 संधेति (संध) व 3/1 सक विरूवरूवे [(विरूव) वि (रूव) 2/2] फासे (फास) 2/2 पडिसंवेदयति (पडिसंवेदयति) व 3/1 सक अनि

5. तत्थ (अ)=उसके लिए खलु (अ)=ही भगवता (भगवता) 3/1

स्त्री

अनि परिण्णा (परिण्णा) 1/1 पवेदिता (पवेदित——→पवेदिता) 1/1 वि इमस्स (इम) 4/1 सवि चेव (अ)=ही जीवियस्स (जीविय) 4/1 परिवंदण-माणण-पूयणाए [(परिवंदण)-(माणण-(पूयण) 4/1] जाती-मरण-मोयणाए (जाती)[1]-(मरण)-(मोयण) 4/1] दुक्खपडिघातहेतु (दुक्ख)-(पडिघात)-(हेतु) 1/1]

1. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर कभी-कभी दीर्घ हो जाते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-4)

6. एतावंति* (एतावंति) 1/2 वि अनि सव्वावंति (अ)=सम्पूर्ण लोगंसि (लोग) 7/1 कम्मसमारंभा [(कम्म)-(समारंभ) 1/2] परिजाणियव्वा (परिजाण) विधि कृ 1/2 भवंति (भव) व 3/2 अक

* 'एतावंति' नपु. लिंग का बहुवचन है और यह 'समारंभा' (पु) का विशेषण है—विचारणीय है

7. जस्सेते [(जएस)+(एते)] जस्स* (ज) 6/1. एते (एत) 1/2 सवि लोगंसि (लोग) 7/1 कम्मसमारंभा [(कम्म)-(समारंभ) 1/2]

12. से (त) 1/1 सवि बेमि (बू) व 1/1 सक इमं (इम) 1/1 सवि पि (अ)=भी जातिधम्मयं [(जाति)-(धम्म) 1/1 स्वार्थिक 'य'] एयं (एय) 1/1 सवि वुड्ढिधम्मयं [(वुड्ढि)-(धम्म) 1/1 स्वार्थिक 'य'] चित्तमंतयं (चित्तमंतय) 1/1 वि छिन्नं (छिन्नं) भूकृ 1/1 अनि मिलाति (मिला) व 3/1 अक आहारगं (आहारग) 1/1 वि अणितियं (अणितिय) 1/1 वि असासयं (असासय) 1/1 वि चयोवचइयं [(चय)+(ओवचइयं)] [(चय]-(ओवचइय→अवचइव) 1/1 वि] विप्परिणामधम्मयं [(विप्परिणाम)-(धम्म) 1/1 स्वार्थिक 'य']

13. सूत्र 5, 8 एवं 10 का व्याकरणिक विश्लेषण देखें। तसकायसत्थं [(तसकाय)-(सत्थ) 2/1]

14. से* (अ)=वाक्य की शोभा बेमि (बू) व 1/1 सक अप्पेगे [(अप्प)+(एगे)] [(अप्प)-(एग) 1/2 सवि] अच्चाए (अच्चा) 4/1 वधेंति (वध) व 3/2 सक अजिणाए (अजिण) 4/1 मंसाए (मंस) 4/1 वहेंति (वह) व 3/1 सक सोणिताए (सोणित) 4/1 हिययाए (हियय) 4/1 वहिंति (वह) व 3/1 सक आर्ष प्रयोग एवं (अ)=इसी प्रकार पित्ताए (पित्त) 4/1 वसाए (वसा) 4/1 पिच्छाए (पिच्छ) 4/1 पुच्छाए (पुच्छ) 4/1 वालाए (वाल) 4/1 सिंगाए (सिंग) 4/1 विसाणाए (विसाण) 4/1 दंताए (दंत) 4/1 दाढाए (दाढ) 4/1 नहाए (नह) 4/1 ण्हारुणीए (ण्हारुणी) 4/1 अट्ठिए* (अट्ठि) 4/1 अट्ठिमिजाए (अट्ठिमिजा) 4/1 अट्ठाए (अट्ठ) 4/1 अणट्ठाए (अणट्ठ) 4/1 हिंसिसु (हिंस) भू 3/2 सक मे (अम्ह) 6/1

स त्ति (अ)=इस प्रकार वा (अ)=संभवतः हिंसति (हिंस) व 3/1 सक हिंसिस्संति (हिंस) भवि 3/2 सक णे (त) 2/2 स

- 'से' शब्द का यहाँ कोई अर्थ नहीं है तथा यह वाक्य सजाने के काम आया है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 624)

* नियमानुसार 'अट्ठीए' होना चाहिए। यह अपवाद प्रतीत होता है।

15. सूत्र 5, 8 एवं 10 का व्याकरणिक विश्लेषण देखें। वाउसत्थं [(वाउ)-(सत्थ) 2/1]

16. से (त) 1/1 सवि त्तं (त) 2/1 स संबुज्झमाणे (संबुज्झ) वकृ 1/1 आयाणीयं (आयाणीय) विधिकृ 2/1 अनि समुट्ठाए (समुट्ठा) विधि 1/1 अक सोच्चा (सोच्चा) संकृ अनि भगवतो (भगवतो) 5/1 अनि अणगाराणं* (अणगार) 6/2 इहमेगेसिं [(इहं)+(एगेसिं)] इहं (अ)=यहाँ. एगेसिं• (एग) 6/2 वि णातं (णात) 1/1 वि भवति (भव) व 3/1 अक एस (एत) 1/1 सवि खलु (अ)=निश्चय ही गंथे (गंथ) 7/1 मोहे (मोह) 7/1 मारे (मार) 7/1 निरए (निरअ) 7/1

* कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पंचमी विभक्ति के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

- कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

17. तं (त) 2/1 सवि परिण्णाय (परिण्णा) संकृ मेहावी (मेहावि) 1/1 वि णेव (अ)=कभी भी नहीं सयं (अ)=स्वयं छज्जीवणिकायसत्थं [(छ)-(ज्जीवणिकाय)-(सत्थ) 2/1] समारभेज्जा (समारभ) व 3/1 सक णेवऽण्णेहिं [(णेव)+(अण्णेहिं)] णेव (अ)=कभी भी नहीं. अण्णेहिं (अण्ण) 3/2 सवि. समारभावेज्जा (समारभ—→ आवे

समारभावे) प्रे. व 3/1 सक णेवऽण्णे [(णेव) + (अण्णे)] णेव (अ)=कभी भी नहीं. अण्णे (अण्ण) 2/2 समारभंते (समारभ) वकृ 2/2 समणुजाणेज्जा (समणुजाण) व 3/1 सक

जस्सेते [(जस्स) + (एते)] जस्स* (ज) 6/1. एते (एत) 1/2 सवि छज्जीवणिकायसत्थसमारंभा [(छ)-(ज्जीवणिकाय)-(सत्थ) -(समारंभ) 1/2] परिण्णाया (परिण्णाय) 1/2 वि भवंति (भव) व 3/2 अक से (त) 1/1 सवि हु (अ)=ही मुणी (मुणि) 1/1 वि परिण्णायकम्मे [(परिण्णाय) वि-(कम्म) 1/1] त्ति (अ)=इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

* कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-134)

18. अट्टे (अट्ट) 1/1 वि लोए (लोअ) 1/1 परिजुण्णे (परिजुण्ण) 1/1 वि दुस्संबोधे (दुस्संबोध) 1/1 वि अविजाणए (अविजाणअ) 1/1 वि अस्सिं (इम) 7/1 सवि लोए (लोअ) 7/1 पव्वहिए (पव्वहिअ) भूकृ 1/1 अनि

19. जाए (जा) 3/1 स सद्धाए (सद्धा) 3/1 णिक्खंतो (णिक्खंत) भूकृ 1/1 अनि तमेव [(तं) + (एव)] तं (त) 2/1 स. एव (अ)=ही अणुपालिया (अणुपाल) संकृ विजहित्ता (विजह) संकृ विसोत्तियं (विसोत्तिय) 2/1

20. पणया (पणय) भूकृ 1/2 अनि वीरा (वीर) 1/2 महावीहिं (महावीहि) 2/1

21. लोगं (लोग) 2/1 च (अ)=अच्छी तरह से आणाए (आणा) 3/1 अभिसमेच्चा (अभिसमेच्चा) संकृ अनि अकुतोभयं (अकुतोभय)

2/1 वि से (अ)=वाक्य की शोभा वेमि (वू) व 1/1 सक णेव (अ)=कभी न सयं (अ)=स्वयं लोगं (लोग) 2/1 अब्भाइक्खेज्जा (अब्भाइक्ख) विधि 3/1 सक अत्ताणं (अत्ताण) 2/1 जे (ज) 1/1 सवि अब्भाइक्खति (अब्भाइक्ख) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि

22. जे (ज) 1/1 सवि गुणे (गुण) 1/1 से (त) 1/1 सवि आवट्टे (आवट्ट) 1/1 उड्ढं (अ)=ऊपर की ओर अहं (अ)=नीचे की ओर तिरियं (अ)=तिरछी दिशा में पाईणं (अ)=सामने की ओर पासमाणे (पास) वकृ 1/1 रूवाइं (रूव) 2/2 पासति (पास) व 3/1 सक सुणमाणे (सुण) वकृ 1/1 सद्दाइं (सद्द) 2/2 सुणेति (सुण) व 3/1 सक

मुच्छमाणे (मुच्छ) वकृ 1/1 रूवेसु (रूव) 7/2 मुच्छति (मुच्छ) व 3/1 सक सद्देसु (सद्द) 7/2 यावि (अ)=और भी

एस (एत) 1/1 स लोगे (लोग) 1/1 वियाहिते (वियाहिते) भूकृ 1/1 अनि एत्थ (अ)=यहाँ पर अगुत्ते (अगुत्त) 1/1 वि अणाणाए (अणाणा) 7/1 पुणो पुणो (अ)=वार वार गुणासाते [(गुण)+(आसाते)] [(गुण)-(आसात) 1/1] वंकसमायारे [(वंक)-(समायार) 1/1 वि] पमत्ते (पमत्त) 1/1 वि गारमावसे [(गारं)+(आवसे)] गारं (गार) 2/1. आवसे* (आवस) व 3/1 सक

* 'आवस' का प्रयोग कर्म (द्वितीया) के साथ होता है।

23. णिज्झाइत्ता (णिज्झा) संकृ पडिलेहित्ता (पडिलेह) संकृ पत्तेयं* (अ)=प्रत्येक परिणिव्वाणं (परिणिव्वाण) 2/1 सव्वेसिं (सव्व) 4/2 सवि पाणाणं (पाण) 4/2 भूताणं (भूत) 4/2 जीवाणं (जीव) 4/2 सत्ताणं (सत्त) 4/2 अस्सातं (अस्सात) 1/1

अपरिणिव्वाणं (अपरिणिव्वाण) 1/1 महब्भयं (महब्भय) 1/1 वि दुक्खं (दुक्ख) 1/1 वि त्ति (अ)=इस प्रकार. बेमि (बू) व 1/1 सक

* बहुधा विशेषणात्मक बल के साथ प्रयुक्त होता है।

24. जे (ज) 1/1 सवि अज्झत्थं (अज्झत्थ) 2/1 जाणति (जाण) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि बहिया (अ)=बाहर की ओर एतं (एता) 2/1 सवि तुलमण्णेसिं [(तुलं)+(अण्णेसिं)] तुलं (तुला) 2/1. अण्णेसिं (अण्णेसि) 1/1 वि

25. अभिकंतं (अभिकंत) भूकृ 2/1 अनि च (अ)=ही खलु (अ)= वास्तव में वयं (वय) 2/1 सपेहाए*=संपेहाए (सपेह) संकृ ततो (अ)=बाद में से (त) 6/1 स एगया (अ)=एक समय मूढभावं [(मूढ) वि-(भाव) 2/1] जणयंति (जणयंति) प्रे. 3/2 सक अनि जेहिं (ज) 3/2 स वा (अ)=और सद्धिं● (अ)=के साथ में संवसति (संवस) व 3/1 अक ते (त) 1/2 सवि व (अ)=ही णं (त) 2/1 स एगया (अ)=एक समय णियगा (णियग) 1/2 वि पुव्विं (अ)=पहले परिवदंति (परिवद) व 3/2 सक सो (त) 1/1 सवि वा (अ)=भी ते (त) 2/2 स णियगे (णियग) 2/2 वि पच्छा (अ)=बाद में परिवदेज्जा (परिवद) व 3/1 सक णालं [(ण)+(अलं)] ण (अ)=नहीं. अलं* (अ) = पर्याप्त ते (त) 1/2 सवि तव (तुम्ह) 6/1 सवि ताणाए (ताण) 4/1 वा (अ)=या सरणाए (सरण) 4/1 तुमं (तुम्ह) 1/1 स पि (अ)=भी तेसिं (त) 6/2 स से (त) 1/1 सवि ण (अ)=नहीं हासाए (हास) 4/1 किड्डाए (किड्डु) 4/1 रतीए (रति) 4/1 विभूसाए (विभूसा) 4/1

* स=सं (सपेहाए=संपेहाए) ● सद्धिं के योग में तृतीया विभक्ति होती है

* संप्रदान के साथ 'अलं' का अर्थ 'पर्याप्त' होता है।

26. इच्चेवं (अ)=इस प्रकार समुट्ठिते (समुट्ठित) 1/1 वि अहोविहाराए (अहोविहार) 4/1 अंतरं (अंतर) 2/1 च (अ)=ही खलु (अ)= सचमुच इमं (इम) 2/1 सवि सपेहाए=संपेहाए (सपेह) संकृ धीरे (धीर) 1/1 वि मुहुत्तमवि [(मुहुत्तं)+(अवि)] मुहुत्तं (क्रिविअ) =क्षणभर के लिए. अवि (अ)=भी णो (अ)=नहीं पमादए (पमाद) विधि 3/1 अक वओ (वअ) 1/1 अच्चेति (अच्चेति) व 3/1 अक अनि जोव्वणं (जोव्वण) 1/1 च (अ)=भी

27. जीविते (जीवित) 7/1 इह (इम) 7/1 सवि जे (ज) 1/2 सवि पमत्ता (पमत्त) 1/2 वि से* (त) 1/1 सवि हंता (हंतु) 1/1 वि छेत्ता (छेत्तु) 1/1 वि भेत्ता (भेत्तु) 1/1 वि लुंपित्ता (लुंपित्तु) 1/1 वि विलुंपित्ता (विलुंपित्तु) 1/1 वि उद्दवेत्ता (उद्दवेत्तु) 1/1 वि उत्तासयित्ता (उत्तासयित्तु) 1/1 वि अकडं (अकड) भूकृ 2/1 अनि करिस्सामि (कर) भवि 1/1 सक त्ति (अ)=इस प्रकार मण्णमाणे (मण्ण) वकृ 1/1

* किसी समुदाय विशेष का बोध कराने के लिए 'एक वचन' या बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ 'से' का प्रयोग एक वचन में है।

28. एवं (अ)=इस प्रकार जाणित्तु (जाण) संकृ दुक्खं (दुक्ख) 2/1 पत्तेयं• (अ)=प्रत्येक सातं (सात) 2/1 अणभिक्कंतं (अणभिक्कंतं) भूकृ 2/1 अनि च (अ)=ही खलु (अ)=सचमुच वयं (वय) 2/1 सपेहाए=संपेहाए (सपेह) संकृ खणं (खण) 2/1 जाणाहि* (जाण) विधि 2/1 सक पंडिते (पंडित) 8/1

* कभी-कभी अकारान्त धातु के अन्तिम 'अ' के स्थान पर विधि आदि में 'आ' हो जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-158)

• बहुधा विशेषणात्मक बल के साथ प्रयुक्त होता है।

जाव (अ)=जब तक सोतपण्णाणा [(सोत)-(पण्णाण) 1/2] अपरिहीणा (अपरिहीण) भूकृ 1/1 अनि णेत्तपण्णाणा [(णेत्त)-(पण्णाण) 1/2] घाणपण्णाणा [(घाण)-(पण्णाण) 1/2] जीहपण्णाणा [(जीह)-(पण्णाण) 1/2] फासपण्णाणा [(फास)-(पण्णाण) 1/2]इच्चेतेहिं (इच्चेत) 3/2 वि विरूवरूवेहि [(विरूव) वि-(रूव) 3/2] पण्णाणेहिं (पण्णाण) 3/2 अपरिहीणेहिं (अपरिहीण) 3/2 वि आयट्ठं [(आय)+(अट्ठं)] [(आय)-अट्ठ) 2/1] सम्मं (अ)=उचित प्रकार से समणुवासेज्जासि (समणुवास) विधि 2/1 सक त्ति (अ)=इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

29. विमुक्का (विमुक्क) 1/2 वि हु (अ) = निश्चय ही ते (त) 1/2 सवि जणा (जण) 1/2 जे (ज) 1/2 सवि पारगामिणो (पारगामि) 1/2 वि लोभमलोभेण [(लोभं)+(अलोभेण)] लोभं (लोभ) 2/1. अलोभेण (अलोभ) 3/1 दुगुंछमाणे (दुगुंछ) वकृ 1/1 लद्धे (लद्ध) भूकृ 2/2 अनि कामे (काम) 2/2 णाभिगाहति [(ण)+(अभिगाहति)] ण (अ)=नहीं. अभिगाहति (अभिगाह) व 3/1 सक

30. णो (अ)=नहीं हीणे (हीण) 1/1 वि अतिरित्ते (अतिरित्त) 1/1 वि

31. जीवियं (जीविय) 1/1 पुढो (अ)=अलग-अलग पियं (पिय) 1/1 वि इहमेगेसिं [(इह)+(एगेसिं)] इहं (अ)=यहाँ. एगेसिं (एग) 4/2 स माणवाणं (माणव) 4/2 खेत्त-वत्थु [(खेत्त)-(वत्थु) मूल शब्द 2/1] ममायमाणाणं (ममा*→ममाय) वकृ 4/2 ण (अ)=नहीं एत्थ (एत) 7/1 सवि तवो (तव) 1/1 वा• (अ) =और दमो (दम) 1/1 णियमो (णियम) 1/1 दिस्सति (दिस्सति) व कर्म 3/1 सक अनि

* 'अ' या 'य' विकल्प से जोड़ा जाता है।

• कभी-कभी यह प्रत्येक शब्द या उक्ति के साथ प्रयुक्त होता है।

32. इणमेव [(इणं) + (एव)] इणं (इम) 2/1 सवि. एव (अ) =ही णावकंखंति [(ण) + (अवकंखंति)] ण (अ) =नहीं. अवकंखंति (अवकंख) व 3/2 सक धुवचारिणो (धुवचारि) 1/2 वि जे (ज) 1/2 स जणा (जण) 1/2
जाती-मरणं [(जाती*)-(मरण) 2/1] परिण्णाय (परिण्णा) संकृ चरे* (चर) विधि 2/1 सक संकमणे• (संकमण) 7/1 दढे (दढ) 7/1 वि

* समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व प्रायः हो जाते है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 1-4)
• कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता हैं (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)
* 'गमन' अर्थ में द्वितीया होती है।

णत्थि (अ) =नहीं कालस्स (काल) 6/1 णागमो [(ण) + (आगमो)] ण (अ) =नहीं. आगमो (आगम) 1/1
सव्वे (सव्व) 1/2 सवि पाणा (पाण) 1/2 पिआउया [(पिअ) + (आउया)] [(पिअ) वि-(आउय) 1/2] सुहसाता [(सुह*) वि-(सात) 1/2]
दुक्खपडिकूला [(दुक्ख)-(पडिकूल) 1/2 वि] अप्पियवधा [(अप्पिय) वि-(वध) 1/2] पियजीविणो [(पिय) वि-(जीविण•) 1/2 वि अनि] जीवितुकामा (जीवितुकाम) 1/2 वि सव्वेसिं (सव्व) 4/2 सवि जीवितं (जीवित) 1/1 पियं (पिय) 1/1 वि

* 'सुह' का अर्थ 'अनुकूल' है।
• सामान्यतः समास के अन्त में प्रयुक्त।

33. तं (अ) =तो परिगिज्झ (परिगिज्झ) संकृ अनि दुपयं (दुपय) 2/1 चउप्पयं (चउप्पय) 2/1 अभिजुंजियाणं (अभिजुंज) संकृ संसिंचियाणं*

(संसिच) संक्र तिविधेण (तिविध) 3/1 वि जा (जा) 1/1 सवि वि (अ)=भी से (त) 6/1 सवि तत्थ (अ)=उस अवसर पर मत्ता (मत्ता) 1/1 भवति (भव) व 3/1 अक अप्पा (अप्प→अप्पा) 1/1 वि वा (अ)=या बहुगा (बहुग→बहुगा) 1/1 वि से (त) 1/1 सवि तत्थ (त) 7/1 स गढिते (गढित) 1/1 वि चिट्ठति (चिट्ठ) व 3/1 अक भोयणाए (भोयण) 4/1

* पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 838

ततो (अ)=बाद में से (त) 4/1 स एगदा (अ)=एक समय विप्परिसिट्ठं (वि-प्परिसिट्ठ) 1/1 वि संभूतं (संभूत) 1/1 वि महोवकरणं [(मह)+(उवकरणं)] [(मह) वि-(उवकरण) 1/1] भवति (भव) व 3/1 अक तं (त) 2/1 स पि (अ)=भी से (त) 6/1 स एगदा (अ)=एक समम दायादा (दायाद) 1/2 विभयंति (विभय) व 3/2 सक अदत्तहारो (अदत्तहार) 1/1 वा (अ)=या से* (त) 6/1 स अवहरति (अवहर) व 3/1 सक रायाणो (राय) 1/2 वा (अ)=या से* (त) 6/1 स विलुंपंति (विलुंप) व 3/2 सक णस्सति (णस्स) व 3/1 अक से (त) 1/1 सवि विणस्सति (विणस्स) व 3/1 अक से (त) 1/1 सवि अगारदाहेण [(अगार)-(दाह) 3/1] वा (अ)=या डज्झति (डज्झति) व कर्म 3/1 सक अनि

* कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया विभक्ति के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

इति (अ)=इस प्रकार. से (त) 1/1 सवि परस्स (पर) 6/1 वि अट्ठाए (अट्ठ) 4/1 कूराइं (कूर) 2/2 वि कम्माइं (कम्म) 2/2 बाले (बाल) 1/1 वि पकुव्वमाणे (पकुव्व) वकृ 1/1 तेण (त) 3/1

स दुक्खेण (दुक्ख) 3/1 मूढे (मूढ़) भूकृ 1/1 अनि विप्परियासमुवेति [(विप्परियासं + (उवेति)] विप्परियासं (विप्परियास) 2/1. उवेति (उवे) व 3/1 सक
मुणिणा (मुणि) 3/1 हु (अ)=ही एतं (एत) 1/1 सवि पवेदितं (पवेदित) भूकृ 1/1 अनि
अणोहंतरा (अणोहंतर) 1/2 वि एते (एत) 1/2 सवि. णो (अ)= नहीं य (अ)=बिल्कुल ओहं• (ओह) 2/1 तरित्तए (तर) हेकृ अतीरंगमा (अ-तीरंगम) 1/2 वि तीरं (तीर) 2/1 गमित्तए (गम) हेकृ अपारंगमा (अ-पारंगम) 1/2 वि पारं (पार) 2/1 आयाणिज्जं (आया) विधिकृ 1/1 च (अ)=ही आदाय (आदा) संकृ तम्मि (त) 7/1 स ठाणे (ठाण) 7/1 ण (अ)=नहीं चिट्ठति (चिट्ठ) व 3/1 अक वितहं (वितह) 2/1 व पप्प (पप्प) संकृ अनि खेतण्णे* (खेतण्ण) 1/1 वि ठाणम्मि (ठाण) 7/1

* 'खेतण्ण' का एक अर्थ 'धूर्त' भी होता है। (Monier williams. Sans. Eng. Dictionary, P. 332)
• कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

34. उद्देसो (उद्देस) 1/1 पासगस्स (पासग) 4/1 वि णत्थि (अ)= नहीं बाले (बाल) 1/1 वि पुण (अ)=और णिहे (णिह) 1/1 वि कामसमणुण्णे [(काम)-(समणुण्ण) 1/1 वि] असमितदुक्खे [(अ-समित) भूकृ अनि-(दुक्ख)* 7/1] दुक्खी (दुक्खि) 1/1 वि दुक्खाणमेव [(दुक्खाणं) + (एव)] दुक्खाणं (दुक्ख) 6/2. एव

(अ)=ही आवट्टं* (आवट्ट) 2/1 अणुपरियट्टति (अणुपरियट्ट) व 3/1 अक त्ति (अ)=इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

* कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

● कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

35. आसं (आस) 2/1 च* (अ)=और छंदं (छंद) 2/1 विगिंच (विगिंच) विधि 2/1 सक धीरे (धीर) 8/1 तुमं (तुम्ह) 1/1 स चेव (अ)=ही तं (त) 2/1 सवि सल्लमाहट्टु [(सल्लं)+(आहट्टु)] सल्लं(सल्ल) 2/1. आहट्टु(आहट्टु) संकृ अनि जेण(ज) 3/1 स सिया (अ)=होना तेण (त) 3/1 स णो (अ)=नहीं इणमेव [(इणं)+(एव)] इणं (इम) 2/1 सवि. एव (अ)=ही णावबुज्झंति [(ण)+(अवबुज्झंति)] ण (अ)=नहीं. अवबुज्झंति (अवबुज्झ) व 3/2 सक जे (ज) 1/2 सवि जणा (जण) 1/2 मोहपाउडा [(मोह)-(पाउड) 1/2 वि]

* 'और' अर्थ को प्रकट करने के लिए कभी कभी 'च' का प्रयोग दो बार किया जाता है।

36. लाभो (लाभ) 1/1 त्ति (अ)=शब्दस्वरूपद्योतक ण (अ)=नहीं मज्जेज्जा (मज्ज) विधि 2/1 अक अलाभो (अलाभ) 1/1 सोएज्जा (सोअ) विधि 2/1 अक बहुं (बहु) 2/1 वि पि (अ)=भी लद्धुं (लद्धुं) संकृ अनि णिहे (णिह) 1/1 वि परिग्गहाओ (परिग्गह) 5/1 अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 अवसक्केज्जा (अवसक्क) विधि 2/1 सक अण्णहा (अ)=विपरीत रीति से णं (त) 2/1 स पासए (पासअ) 1/1 वि परिहरेज्जा (परिहर) व 3/1 सक

37. कामा (काम) 1/2 दुरतिक्कमा (दुरतिक्कम) 1/2 वि जीवियं (जीविय) 1/1 दुप्पडिवूहगं (दुप्पडिवूहग) 1/1 वि कामकामी [(काम)-(कामि) 1/1 वि] खलु (अ) =ही अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस) 1/1 से (त) 1/1 सवि सोयति (सोय) व 3/1 अक जूरति (जूर) व 3/1 सक तिप्पति (तिप्प) व 3/1 अक पिड्डति (पिड्ड) व 3/1 अक परितप्पति (परितप्प) व 3/1 अक

38. आयतचक्खू [(आयत) वि-(चक्खु) 1/2] लोगविप्पस्सी [(लोग)-(विपस्सि) 1/1 वि] लोगस्स (लोग) 6/1 अहे (अ)=नीचे भागं (भाग) 2/1 जाणति (जाण) व 3/1 सक उड्ढं (उड्ढ) 2/1 वि तिरियं (तिरिय) 2/1 वि गढिए (गढिअ) 1/1 वि अणुपरियट्टमाणे (अणुपरियट्ट) वकृ 1/1 संधिं (संधि) 2/1 विदित्ता (विदित्ता) संकृ अनि इह (अ)=यहाँ मच्चिएहिं (मच्चिअ) 3/2 एस (एत) 1/1 सवि वीरे (वीर) 1/1 पसंसिते (पसंसित) भूकृ 1/1 अनि जे (ज) 1/1 सवि बद्धे (बद्ध) 2/2 वि पडिमोयए (पडिमोयए) व 3/1 सक अनि

39. कासंकसे (कासंकस) 1/1 वि खलु (अ)=सचमुच अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस) 1/1 बहुमायी (बहुमायि) 1/1 वि कडेण (अ) =के कारण मूढे (मूढ) 1/1 वि पुणो (अ)=फिर तं (अ)= इसलिए करेति (कर) व 3/1 सक लोभं (लोभ) 2/1 वेरं (वेर) 2/1 वड्ढेति (वड्ढ) व 3/1 सक अप्पणो (अप्प) 4/1

40. जे (ज) 1/1 सवि ममाइयमतिं [(ममाइय) वि-(मति) 2/1] जहाति (जहा) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि ममाइतं (ममाइत) 2/1 वि हु (अ)=ही दिट्ठपहे [(दिट्ठ) वि-(पह) 1/1]मुणी (मुणि) 1/1 जस्स (ज) 4/1 स णत्थि (अ)=नहीं

41. जे (ज) 1/1 सवि अणण्णदंसी [(अणण्ण) वि-(दंसि) 1/1 वि] से (त) 1/1 सवि अणण्णारामे [(अणण्ण)+(आरामे)] [(अणण्ण) वि-(आराम) 7/1]

42. उड्ढं (अ)=ऊँची, अहं (अ) नीची तिरियं (अ)=तिरछी दिसासु (दिसा) 7/2 से (त) 1/1 वि सव्वतो (अ)=सब ओर से सव्वपरिण्णाचारी [(सव्व) वि-(परिण्णा)-(चारि) 1/1 वि] ण (अ)=नहीं लिप्पति (लिप्पति) व कर्म 3/1 सक अनि छणपदेण [(छण)-(पद) 3/1] वीरे (वीर) 1/1 वि.

43. से (त) 1/1 सवि मेधावी (मेधावि) 1/1 वि जे (ज) 1/1 सवि अणुग्घातणस्स (अणुग्घातण) 6/1 खेत्तण्णे (खेत्तण्ण) 1/1 वि जे (ज) 1/1 सवि य (अ)=भी बंधपमोक्खमण्णेसी [(बंध)+(पमोक्खं)+(अण्णेसी)] [(बंध)-(पमोक्ख)* 2/1] अण्णेसी (अण्णेसि) 1/1 वि

* कभी कभी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

कुसले (कुसल) 1/1 वि पुण (अ)=और णो (अ)=नहीं बद्धे (बद्ध) भूकृ 1/1 अनि मुक्के (मुक्क) भूकृ 1/1 अनि
से (त) 1/1 सवि जं (ज) 2/1 स च (अ)=भी आरभे (आरभ) व 3/1 सक च (अ)=बिल्कुल णारभे [(ण)+(आरभे)] ण (अ)=नहीं. आरभे (आरभ) व 3/1 सक अणारद्धं (अणारद्ध) 2/1 वि च (अ)=बिल्कुल ण (अ)=नहीं आरभे (आरभ) विधि 3/1 सक

44. सुत्ता (सुत्त) भूकृ 1/2 अनि अमुणी (अमुणि) 1/2 वि मुणिणो (मुणि) 1/2 सया (अ)=सदा जागरंति (जागर) व 3/2 अक

45. जस्सिंमे [(जस्स) + (इमे)] जस्स* (ज) 6/1. इमे (इम) 1/2 सवि सद्दा (सद्द) 1/2 य (अ)=और रूवा (रूव) 1/2 गंधा (गंध) 1/2 रसा (रस) 1/2 फासा (फास) 1/2 अभिसमण्णागता (अभिसमण्णागत) 1/2 वि भवंति (भव) व 3/2 अक से (त) 1/1 सवि आतवं• (आतवन्त→आतवन्तो→आतवं) 1/1 वि णाणवं• (णाणवन्त→णाणवन्तो→णाणवं) 1/1 वि वेयवं• (वेयवन्त→वेयवन्तो→वेयवं) 1/1 वि धम्मवं• (धम्मवन्त→धम्मवन्तो→धम्मवं) 1/1 वि बंभवं• (बंभवन्त→बंभवन्तो→बंभवं) 1/1 वि

* कभी कभी षष्ठी का प्रयोग तृतीया के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

• विकल्प से 'त' का लोप तथा 'न्' का अनुस्वार होने से उपर्युक्त रूप बने। (अभिनव प्राकृत व्याकरण : पृष्ठ 427)

46. पासिय (पास) संकृ आतुरे (आतुर) 2/2 वि पाणे (पाण) 2/2 अप्पमत्तो (अप्पमत्त) 1/1 वि परिव्वए (परिव्वअ) विधि 2/1 सक मंता (मा*) वकृ 1/2 एयं (एय) 2/1 सवि मतिमं (मतिमन्त→मतिमन्तो→मतिमं) 8/1 वि पास (पास) विधि 2/1 सक आरंभजं (आरंभज) 1/1 वि दुक्खमिणं [(दुक्खं) + (इणं)] दुक्खं (दुक्ख) 1/1. इणं (इम) 1/1 सवि ति (अ)=इस प्रकार णच्चा (णच्चा) संकृ अनि
मायी (मायि) 1/1 वि पमायी (पमायि) 1/1 वि पुणरेति (पुणरेति) व 3/1 सक अनि गब्भं• (गब्भ) 2/1
उवेहमाणो (उवेह) वकृ 1/1 सद्द-रूवेसु* [(सद्द)-(रूव) 7/2] अंजू (अंजु) 1/1 वि माराभिसंकी [(मार) + (अभिसंकी)] [(मार)

–(अभिसंकि) 1/1 वि] मरणा (मरण) 5/1 पमुच्चति (पमुच्चति) व कर्म 3/1 सक अनि

* 'मा' का एक अर्थ 'चीखना' भी होता है।
● 'गमन' अर्थ मे द्वितीया का प्रयोग होता है।
* कभी कभी द्वितीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)

47. अप्पमत्तो (अप्पमत्त) 1/1 वि कामेहिं* (काम) 3/2 उवरतो (उवरत) भूकृ 1/1 अनि पावकम्मेहिं● [(पाव)–(कम्म) 3/2] वीरे (वीर) 1/1 वि आतगुत्ते [(आत)–गुत्त) 1/1 वि] खेयण्णे (खेयण्ण) 1/1 वि
जे (ज) 1/1 सवि पज्जवजातसत्थस्स [(पज्जव)-(जात)–(सत्थ) 6/1] खेतण्णे (खेतण्ण) 1/1 वि से (त) 1/1 सवि असत्थस्स (असत्थ) 6/1

* कभी कभी सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)
● कभी कभी पंचमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3–136)

48. अकम्मस्स (अकम्म) 4/1 वि ववहारो (ववहार) 1/1 ण (अ)= नहीं विज्जति (विज्ज) व 3/1 अक
कम्मुणा (कम्म) 3/1 उवाधि (उवाधि) मूलशब्द 1/1 जायी (जाय) व 3/1 अक

49. कम्मं (कम्म) 1/1 च (अ)=ही पडिलेहाए (पडिलेह) संकृ कम्ममूलं [(कम्म)–(मूल) 1/1] च (अ)=तथा जं (ज) 1/1 सवि छणं (छण) 1/1 पडिलेहिय (पडिलेह) संकृ सव्वं (सव्व) 2/1 वि

समायाय (समाया) संकृ दोहिं (दो) 3/2 वि अंतेहिं (अंत) 3/2 अदिस्समाणे (अदिस्समाण) वकृ कर्म 1/1 अनि

50. अग्गं (अग्ग) 2/1 च* (अ)=और मूलं (मूल) 2/1 विगिंच (विगिंच) विधि 2/1 सक धीरे (धीर) 1/1 पलिछिंदियाणं (पलिछिंद) संकृ णिक्कम्मदंसी [(णिक्कम्म) वि-(दंसि) 1/1 वि]

* कभी कभी और अर्थ को प्रकट करने के लिए 'च' का दो वार प्रयोग किया जाता है।

51. लोगंसि (लोग) 7/1 परमदंसी [(परम)-(दंसि) 1/1 वि] विवित्त-जीवी [(विवित्त)-(जीवि) 1/1 वि] उवसंते (उवसंत) 1/1 वि समिते (समित) 1/1 वि सहिते (सहित) 1/1 वि सदा (अ)= सदा जते (जत) 1/1 वि कालकंखी [(काल)-(कंखि) 1/1 वि] परिव्वए (परिव्वअ) व 3/1 सक

52. सच्चंसि (सच्च) 7/1 धितिं (धिति) 2/1 कुव्वह (कुव्व) विधि 2/2 सक एत्थोवरए [(एत्थ) + (उवरए)] एत्थ (एत) 7/1. उवरए (उवरअ) भूकृ 1/1 अनि मेहावी (मेहावि) 1/1 वि सव्वं (सव्व) 2/1 वि पावं (पाव) 2/1 वि कम्मं (कम्म) 2/1 झोसेति (झोस) व 3/1 सक

53. अणेगचित्ते [(अणेग)-(चित्त) 2/2] खलु (अ)=सचमुच अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस) 1/1 से (त) सवि केयणं (केयण) 2/1 अरिहइ (अरिह*) व 3/1 सक पूरइत्तए (पूर) हेकृ.

* 'अरिह' के साथ हेकृ या कर्म का प्रयोग होता है।

54. णिस्सारं (णिस्सार) 2/1 वि पासिय (पास) संकृ णाणी (णाणि) 8/1 उववायं (उववाय) 2/1 चवणं (चवण) 2/1 णच्चा (णच्चा) संकृ

अनि. अराण्णं (अराण्ण) 2/1 वि चर (चर) विधि 2/1 सक माहणे (माहरा) 8/1. से (त) 1/1 सवि रा (अ)=नहीं छरो (छरा) व 3/1 सक छरावए (छराव) प्रे. व 3/1 सक छणंतं (छरा) वकृ 2/1 रााणुजाराति [(रा) + (अरगुजाराति)] रा (अ)=नहीं. अणु-जाराति (अणुजारा) व 3/1 सक.

55. कोधादिमाणं [(कोध) + (आदि) + (माणं)] [(कोध)-(आदि)-(मारा) 2/1] हरिणया (हरा) संकृ य (अ)=सर्वथा वीरे (वीर) 1/1 वि लोभस्स* (लोभ) 6/1 पासे (पास) व 3/1 सक णिरयं (णिरय) 2/1 महंतं (महंत) 2/1 वि तम्हा (अ)=इसलिए हि (अ)=ही विरते (विरत) भूकृ 1/1 अनि वधातो (वध) 5/1 छिंदिज्ज• (छिंद) व 3/1 सक सोतं (सोत) 2/1 लहुभूयगामी [(लहु)-भूय) संकृ-(गामि) 1/1 वि]

* कभी कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)
• पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 680

56. गंथं (गंथ) 2/1. परिण्णाय (परिण्णा) संकृ इहऽज्ज [(इह) + (अज्ज)] इह (अ)=यहाँ. अज्ज (अ)=आज वीरे (वीर) 1/1 वि सोयं (सोय) 2/1 चरेज्ज (चर) विधि 3/1 सक दंते (दंत) 1/1 वि उम्मुग्ग (उम्मुग्ग) मूलशब्द 6/1 लद्धुं (लद्धुं) संकृ अनि इह (अ)=यहाँ माणवेहिं (माणव) 3/2 णो (अ)=नहीं पाणिणं* (पाणि) 6/2. पाणे (पाण) 2/2 समारभेज्जासि (समारभ) व 2/1 सक

* प्राकृत में विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 182)

57. समयं (समय) 2/1 तत्थुवेहाए [(तत्थ) + (उवेहाए)] तत्थ (अ) =वहाँ. उवेहाए (उवेह) संकृ अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 विप्पसादए (वि–प्पसाद) विधि 3/1 सक अणण्णपरमं [(अणण्ण) + (परमं)] [(अणण्ण)–(परम)* 2/1] णाणी (णाणि) 1/1 वि णो (अ) =नहीं पमादे (पमाद) विधि 3/1 अक कयाइ (अ)=कभी वि (अ)=भी आतगुत्ते [(आत)–(गुत्त) 1/1 वि] सया (अ)=सदा

स्त्री

वीरे (वीर) 1/1 वि जातामाताए [(जाता)—मात—→ (माता) 4/1 वि] जावए (जाव) विधि 3/1 सक विरागं (विराग) 2/1 रूवेहिं• (रूव) 3/2 गच्छेज्जा (गच्छ) विधि 3/1 सक महता (महता) 3/1 वि अनि. खुड्डएहिं• (खुड्डअ) 3/2 वि वा (अ)= और आगतिं (आगति) 2/1 गतिं (गति) 2/1 परिण्णाय (परिण्णा) संकृ दोहिं (दो) 3/2 वि वि (अ)=ही अंतेहिं (अंत) 3/2 अदिस्समाणेहिं (अ–दिस्समाण) वकृ कर्म 3/2 अनि. से (त) 1/1 सवि ण (अ)=नहीं छिज्जति (छिज्जति) व कर्म 3/1 सक अनि भिज्जति (भिज्जति) व कर्म 3/1 सक अनि डज्झति (डज्झति) व कर्म 3/1 सक अनि हम्मति (हम्मति) व कर्म 3/1 सक अनि कंचणं (अ)=किसी भी तरह सव्वलोए [(सव्व)–(लोअ) 7/1]

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)

• कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–136)

58. अवरेण* (अवर) 3/1 पुव्वं (पुव्व) 2/1 वि ण (अ)=नहीं सरंति (सर) व 3/2 सक एगे (एग) 1/2 सवि किमस्स [(किं) + (अस्स)] किं (किं) 1/1 स. अस्स (इम) 6/1 स (अ)• तीतं (तीत) 1/1 वि किं (किं) 1/1 स वाऽऽगमिस्सं [(वा) + (आगमिस्सं)]

वा (अ)=और. आगमिस्सं (आगमिस्स) 1/1 वि भासंति (भास) व 3/2 सक इह (अ)=यहाँ माणवा (माणव) 1/2 तु (अ)= किन्तु जमस्स [(जं)+(अस्स)] जं (ज) 1/1 सवि. अस्स (इम) 6/1 स तं (त) 1/1 सवि आगमिस्सं (आगमिस्स) 1/1 वि णातीतमट्ठं [(ण)+(अतीतं)+(अट्ठं)] ण (अ)=नहीं. अतीतं (अतीत) 2/1 वि. अट्ठं (अट्ठ) 2/1 य (अ)=तथा णियच्छिन्ति (णियच्छ) व 3/2 सक तथागता (तथागत) 1/2 उ (अ)=इसके विपरीत विधूतकप्पे [(विधूत) वि—(कप्प)* 7/1] एताणुपस्सी [(एत)+(अणुपस्सी)] एत (अ)=अब. अणुपस्सी (अणुपस्सि) 1/1 वि णिज्झोसइत्ता (णिज्झोसइत्तु) 1/1 वि

* 'सह' के योग में तृतीया होती है।
● 'अ' का लोप (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-66)
* कभी कभी तृतीया के स्थान पर सप्तमी होती है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

59. पुरिसा (पुरिस) 8/1 तुममेव [(तुमं)+(एव)] तुमं (तुम्ह) 1/1 स. एव (अ)=ही तुमं (तुम्ह) 6/1 स मित्तं (मित्त) 1/1 किं (अ)=क्यों बहिया (अ)=वाहर की ओर मित्तमिच्छसि [(मित्तं) + (इच्छसि)] मित्तं (मित्त) 2/1. इच्छसि (इच्छ) व 2/1 सक जं (ज) 2/1 सवि जाणेज्जा (जाण) विधि 2/1 सक उच्चालयितं [(उच्च)+(आलयितं)] [(उच्च) वि–(आलयित) भूकृ 2/1 अनि] तं (त) 2/1 सवि दूरालयितं [(दूर)+(आलयितं)] [(दूर) वि–(आलयित) भूकृ 2/1 अनि] दूरालइतं [(दूर)+(आलइतं)] [(दूर) वि–(आलइत) भूकृ 2/1 अनि]

60. पुरिसा (पुरिस) 8/1 अत्ताणमेव [(अत्ताणं)+(एव)] अत्ताणं (अत्ताण) 2/1. एव (अ)=ही अभिणिगिज्झ (अभिणिगिज्झ) संकृ

श्रान एवं (अ)=इस प्रकार दुक्खा (दुक्ख) 5/1 पमोक्खसि (पमोक्खसि) भवि 2/1 अक आर्ष

61. पुरिसा (पुरिस) 8/1 सच्चमेव [(सच्चं)+(एव)] सच्चं (सच्च) 2/1. एव (अ)=ही समभिजाणाहि (समभिजाण) विधि 2/1 सक सच्चस्स (सच्च) 6/1 आणाए (आणा) 7/1 से (त) 1/1 सवि उवट्ठिए (उवट्ठिअ) 1/1 वि मेधावी (मेघावि) 1/1 वि मारं (मार) 2/1 तरति (तर) व 3/1 सक. सहिते (सहित) 1/1 वि धम्ममादाय [(धम्मं)+(आदाय)] धम्मं (धम्म) 2/1. आदाय (आदा) संकृ सेयं (सेय) 2/1 वि समणुपस्सति (समणुपस्स) व 3/1 सक दुक्खमत्ताए [(दुक्ख)-(मत्ता) 3/1] पुट्ठो (पुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि णो (अ)=नहीं झंझाए (झंझा) 7/1

62. जे (ज) 1/1 सवि एगं (एग) 2/1 सवि जाणति (जाण) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि सव्वं (सव्व) 2/1 वि
सव्वतो (अ)=सव ओर से पमत्तस्स (पमत्त) 4/1 भयं (भय) 1/1 अप्पमत्तस्स (अप्पमत्त) 4/1 णत्थि (अ)=नहीं
एग (एग) मूल शब्द 2/1 णामे (णाम) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि बहु (बहु) मूल शब्द 2/1 दुक्खं (दुक्ख) 2/1 लोगस्स (लोग) 6/1 जाणित्ता (जाण) संकृ वंता (वंता) संकृ अनि. लोगस्स* (लोग) 6/1 संजोगं (संजोग) 2/1 जंति* (जा) व 3/2 सक वीरा (वीर) 1/2 वि महाजाणं (महाजाण) 2/1 परेण* (क्रिविअ)= आगे से परं* (क्रिविअ)=आगे को णावकंखंति [(ण)+(अवकंखंति)] ण (अ)=नहीं. अवकंखंति (अवकंख) व 3/2 सक जीवितं (जीवित) 2/1 एगं (एग) 2/1 सवि विगिंचमाणे (विगिंच) वकृ 1/1 पुढो (अ)=एक एक करके विगिंचइ (विगिंच) व 3/1 सक सड्ढी (सड्ढि) 1/1 वि आणाए (आणा) 7/1 मेधावी

(मेधावि) 1/1 वि लोगं (लोग) 2/1 च (अ)=ही अभिसमेच्चा (अभिसमेच्चा) संकृ अनि. अकुतोभयं (अकुतोभय) 1/1 वि अत्थि (अ)=है सत्थं (सत्थ) 1/1 परेण* (अ)=अच्छे से. परं (पर) 1/1 वि णत्थि (अ)=नहीं है असत्थं (असत्थ) 1/1

* कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

● जा→जान्ति→जन्ति (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-84)

★ कर्म, करण और अधिकरण के एक वचन के 'पर' शब्द के रूप क्रिया विशेषण की भाँति प्रयोग किए जाते हैं।

63. किमत्थि [(किं) + (अत्थि)] किं (अ)=क्या. अत्थि (अ)=है उवधी (उवधि) 1/1 पासगस्स (पासग) 4/1 ण (अ)=नहीं विज्जति (विज्ज) व 3/1 सक णत्थि (अ)=नहीं है त्ति (अ)= इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक.

64. सव्वे (सव्व) 1/2 वि पाणा (पाण) 1/2 भूता (भूत) 1/2 जीवा (जीव) 1/2 सत्ता (सत्त) 1/2 ण (अ)=नहीं हंतव्वा (हंतव्वा) विधि कृ 1/2 अनि अज्जावेतव्वा (अज्जाव) विधि कृ 1/2 परिघेत्तव्वा (परिघेत्तव्वा) विधि कृ 1/2 अनि परितावेयव्वा (परिताव) विधि कृ 1/2 उद्दवेयव्वा (उद्दव) विधि कृ 1/2
एस (एत) 1/1 सवि धम्मे (धम्म) 1/1 सुद्धे (सुद्ध) 1/1 वि णितिए (णितिअ) 1/1 वि सासए (सासअ) 1/1 वि समेच्च (समेच्च) संकृ अनि लोयं (लोय) 2/1 खेतण्णेहिं (खेतण्ण) 3/2 पवेदिते (पवेदित) भूकृ 1/1 अनि

65. णो (अ)=नहीं लोगस्सेसणं [(लोगस्स)+(एसणं)] लोगस्स* (लोग) 6/1 एसणं (एसणा) 2/1 चरे (चर) विधि 3/1 सक

* कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

66. णाऽणागमो [(णा)+(अणागमो)] णा (अ)=नहीं. अणागमो (अणागम) 1/1 मच्चुमुहस्स• [(मच्चु)—(मुह) 6/1] अत्थि (अ)=है. इच्छापणीता [(इच्छा)—(पणीत) भूकृ 1/2 अनि] वंकाणिकेया [वंक→(वंका*)—(णिकेय) 1/2] कालग्गहीता [(काल)-(ग्गहीत) भूकृ 1/2 अनि] णिचये (णिचय) 7/1 णिविट्ठा (णिविट्ठ) 1/1 वि पुढो पुढो (अ)=अलग अलग जाइं (जाइ) 2/1 पकप्पेंति (पकप्प) व 3/2 सक

• कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

* समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-4)

67. इह (अ)=यहाँ आणाकंखी [(आणा)-(कंखि) 1/1 वि] पंडिते (पंडित) 8/1 वि अणिहे (अणिह) 1/1 वि एगमप्पाणं [(एगं)+(अप्पाणं)] एगं (एग) 2/1 वि. अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 सपेहाए (सपेह→संपेह•) संकृ धुणे (धुण) विधि 2/1 सक सरीरं (सरीर) 2/1 कसेहि (कस) विधि 2/1 सक जरेहि (जर) विधि 2/1 अक अप्पाणं* (अप्पाण) 2/1 जहा (अ)=जैसे जुन्नाइं (जुन्न) 1/2 वि कट्ठाइं (कट्ठ) 1/2 हव्ववाहो (हव्ववाह) 1/1 पमत्थति (पमत्थ) व

3/1 सक एवं (अ)=इसी प्रकार अत्तसमाहित [(अत्त)-(समाहित) 1/1 वि] अणिहे (अणिह) 1/1 वि.

- स=सं
- * कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

68. णेत्तेहिं[1] (णेत्त) 3/2 पलिछिण्णेहिं (पलिछिण्ण) भूकृ 3/2 अनि आताणसोतगढिते [(आताण[2])-(सोत)-(गढित) 1/1 वि] बाले (बाल) 1/1 वि अव्वोच्छिण्णबंधणे [(अव्वोछिन्न) वि-(बंधण) 1/1] अणभिक्कंतसंजोए [(अणभिक्कंत) वि-(संजोअ) 1/1] तमंसि (तम) 7/1 अविजाणओ (अविजाणअ) 1/1 वि आणाए (आणा) 6/1 लंभो (लंभ) 1/1 णत्थि (अ)=नहीं त्ति (अ)= इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक.

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
2. यहाँ 'आयाण' पाठ होना चाहिए।

69. संसयं (संसय) 2/1 परिजाणतो (परिजाण) पंचमी अर्थक 'तो' प्रत्यय संसारे (संसार) 1/1 परिण्णाते (परिण्णात) भूकृ 1/1 अनि भवति (भव) व 3/1 अक अपरिजाणतो (अपरिजाण) पंचमी अर्थक 'तो' प्रत्यय अपरिण्णाते (अपरिण्णात) भूकृ 1/1 अनि

70. उट्ठिते (उट्ठित) भूकृ 1/1 अनि. णो (अ)=नहीं पमादए (पमाद) व 3/1 अक

71. से (अ)=वाक्या की शोभा पुव्वं (अ)=पहले पेतं (पेत) भूकृ 1/1 अनि पच्छा (अ)=बाद में भेउरधम्मं [(भेउर) वि-(धम्म) 1/1] विद्धंसणधम्मं [(विद्धंसण)-(धम्म) 1/1] अधुवं (अधुव) 1/1

वि अणितियं (अणितिय) 1/1 वि असासतं (असासत) 1/1 वि चयोवचइयं [(चय) + (ओवचइय)] [(चय)-(ओवचइए→ अवचइय) 1/1 वि] विप्परिणामधम्मं [(विप्परिणाम)-(धम्म) 1/1] पासह (पास) विधि 2/2 सक एयं (एय) 2/1 सवि रूवसंधि [(रूव)-(संधि) 2/1].

72. से (अ)=वाक्य की शोभा सुतं (सुत) भूकृ 1/1 अनि. च (अ)= और मे (अम्ह) 3/1 स अज्झत्थं (अज्झत्थ) 1/1. बंधपमोक्खो [(बंध)-(पमोक्ख) 1/1] तुज्झऽज्झत्थेव [(तुज्झ) + (अज्झत्थ) + (एव)] तुज्झ (तुम्ह) 6/1 स. अज्झत्थ (अज्झत्थ) मूलशब्द 7/1. एव (अ)=ही.

73. समियाए (समिया) 7/1 धम्मे (धम्म) 1/1 आरिएहिं (आरिअ) 3/2 पवेदिते (पवेदित) भूकृ 1/1 अनि.

74. इमेण* (इम) 3/1 चेव (अ)=ही जुज्झाहि (जुज्झ) विधि 2/1 अक किं (किं) 1/1 स ते (तुम्ह) 4/1 स. जुज्झेण (जुज्झ) 3/1 बज्झतो (अ)=बाहर से जुद्धारिहं [(जुद्ध) + (अरिहं)] [(जुद्ध)-(अरिह) 1/1 वि] खलु (अ)=निश्चय ही दुल्लभं (दुल्लभ) 1/1 वि

* 'सह' के योग में तृतीया होती है।

75. उण्णतमाणे [(उण्णत*)-(माण) 7/1] य (अ)=ही णरे (णर) 1/1 महता (महता) 3/1 वि अनि मोहेण (मोह) 3/1 मुज्झति (मुज्झ) व 3/1 अक

* यहाँ 'उण्णत' शब्द संज्ञा है। विभिन्न कोश देखें।

76. वितिगिंछसमावन्नेणं [(वितिगिंछ)-(समावन्न) 3/1 वि] अप्पाणेणं* (अप्पाण) 3/1 णो (अ)=नहीं लभति (लभ) व 3/1 सक समाधिं (समाधि) 2/1

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)

77. से (अ)=वाक्या की शोभा उट्ठितस्स (उट्ठित) भूकृ 6/1 अनि ठितस्स (ठित) भूकृ 6/1 अनि गतिं (गति) 2/1 समणुपासह (समणुपास) विधि 2/2 सक एत्थ (अ)=यहाँ वि (अ)=बिल्कुल बालभावे [(बाल)-(भाव) 7/1] अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 णो (अ)=नहीं उवदंसेज्जा (उवदंस) विधि 2/1 सक

78. तुमं (तुम्ह) 1/1 स सि (अस) व 2/1 अक णाम (अ)=निस्सन्देह तं (त) 1/1 सवि चेव (अ)=ही जं (ज) 2/1 स हंतव्वं (हंतव्वं) विधिकृ 1/1 अनि ति (अ)=देख! मण्णसि (मण्ण) व 2/1 सक अज्जावेतव्वं (अज्जाव) विधिकृ 1/1 परितावेतव्वं (परिताव) विधिकृ 1/1 परिघेतव्वं (परिघेतव्वं) विधिकृ 1/1 अनि उद्दवेतव्वं (उद्दव) विधिकृ 1/1

अंजू (अंजु) 1/1 वि चेयं (अ)=ही पडिबुद्धजीवी [(पडिबुद्ध) वि-(जीवि) 1/1 वि] तम्हा (अ)=इसलिए ण (अ)=नहीं हंता (हंतु) 1/1 वि (अ)=ही घातए (घात) व 3/1 सक अणुसंवेयण-मप्पाणेणं [(अणुसंवेयणं)+(अप्पाणेणं)] अणुसंवेयणं (अणुसंवेयण) 1/1. अप्पाणेणं (अप्पाण) 3/1 जं (ज) 2/1 स हंतव्वं (हंतव्वं) विधिकृ 1/1 अनि णाभिपत्थए [(ण)+(अभिपत्थए)] ण (अ)= नहीं. अभिपत्थए (अभिपत्थ) विधि 2/1 सक

79. जे (ज) 1/1 सवि आता (आत) 1/1 से (त) 1/1 सवि विण्णाता (विण्णातु) 1/1 वि जेण (ज) 3/1 स विजाणति (विजाण) व 3/1 सक तं (त) 2/1 स पडुच्च (अ)=आधार बनाकर पडिसंखाए (पडिसखा) व 3/1 सक एस (एत) 1/1 सवि आतावादी (आतावादि) 1/1 वि समियाए (समिया) 6/1 परियाए (परियाअ) 1/1 वियाहिते (वियाहित) भूकृ 1/1 अनि त्ति (अ)=इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

80. अणाणाए (अणाणा) 7/1 एगे (एग) 1/2 सवि सोवट्ठाणा [(स)+(उवट्ठाण)] [(स) वि-(उवट्ठाण) 1/2] आणाए (आणा) 7/1 णिरुवट्ठाणा (णिरुवट्ठाण) 1/2 एतं (एत) 1/1 सवि ते (तुम्ह) 4/1 स मा (अ)=न होतु (हो) विधि 3/1 अक

81. सव्वे (सव्व) 1/2 वि सरा (सर) 1/2 नियट्टंति (नियट्ट) व 3/2 अक तक्का (तक्क→तक्का) 1/1 जत्थ (ज) 7/1 स ण (अ)=नहीं विज्जति (विज्ज) व 3/1 अक मती (मति) 1/1 तत्थ (त) 7/1 स ण (अ)=नहीं गाहिया (गाहिया) 1/1 स्त्री ओए (ओअ) 1/1 अप्पतिट्ठाणस्स* (अप्पतिट्ठाण) 6/1 खेत्तण्णे (खेत्तण्ण) 1/1 वि

से (त) 1/1 सवि ण (अ) = नहीं दीहे (दीह) 1/1 वि हस्से (हस्स) 1/1 वि वट्टे (वट्ट) 1/1 वि तंसे (तंस) 1/1 वि चउरंसे (चउरंस) 1/1 वि परिमंडले (परिमंडल) 1/1 वि किण्हे (किण्ह) 1/1 वि णीले (णील) 1/1 वि लोहिते (लोहित) 1/1 वि हालिद्दे (हालिद्द) 1/1 वि सुक्किले (सुक्किल) 1/1 वि सुरभिगंधे (सुरभिगंध) 1/1 वि दुरभिगंधे (दुरभिगंध) 1/1 वि तित्ते (तित्त) 1/1 वि कडुए (कडुअ) 1/1 वि कसाए (कसाअ) 1/1 वि अंबिले (अंबिल) 1/1 वि महुरे (महुर) 1/1 वि कक्खडे (कक्खड) 1/1 वि मउए (मउअ) 1/1 वि गरुए (गरुअ) 1/1 वि लहुए (लहुअ) 1/1 वि सीए (सीअ) 1/1 वि

उण्हे (उण्ह) 1/1 वि णिद्धे (णिद्ध) 1/1 वि लुक्खे (लुक्ख) 1/1 वि काऊ (काउ) 1/1 वि रुहे (रुह) 1/1 वि संगे (संग) 1/1 इत्थी (इत्थि) 1/1 पुरिसे (पुरिस 1/1 अण्णहा (अ)=इसके विपरीत परिण्णे (परिण्ण) 1/1 वि सण्णे (सण्ण) 1/1 वि उवमा (उवमा) 1/1 विज्जति (विज्ज) व 3/1 अक अरूवी (अरूवि) 1/1 वि सत्ता (सत्ता) 1/1 अपदस्स (अपद) 4/1 वि पदं (पद) 1/1 णत्थि (अ) =नहीं सद्दे (सद्द) 1/1 रूवे (रूव) 1/1 गंधे (गंध) 1/1 रसे (रस) 1/1 फासे (फास) 1/1 इच्चेतावंति (इच्चेतावंति) 2/2 वि अनि त्ति (अ)=इस प्रकार बेमि (वू) व 1/1 सक.

* कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-134)

82. संति (अस) व 3/1 अक पाणा (पाण) 1/2 अंधा (अंध) 1/2 वि तमंसि (तम) 7/1 वियाहिता (वियाहित) भूकृ 1/2 अनि. पाणा (पाण) 1/2 पाणे (पाण) 2/2 किलेसंति (किलेस) व 3/2 सक बहुदुक्खा [(बहु)-(दुक्ख) 1/2 वि] हु (अ)=निस्सन्देह जंतवो (जंतु) 1/2 सत्ता (सत्त) 1/2 वि कामेहि (काम) 3/2 माणवा (माणव) 1/2 अबलेण* (अबल) 3/1 वि वहं (वह) 2/1 गच्छंति (गच्छ) व 3/2 सक सरीरेण* (सरीर) 3/1 पभंगुरेण* (पभंगुर) 3/1 वि

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

83. आणाए* (आणा) 7/1 मामगं (मामग) 1/1 वि या मामगं (मामग) 2/1 वि धम्मं (धम्म) 1/1 या धम्मं (धम्म) 2/1

* (द्वितीय अर्थ में) सप्तमी का प्रयोग द्वितीया विभक्ति के स्थान पर किया गया है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

84. जहा (अ) = जैसे से (अ) = वाक्य की शोभा दीवे (दीव) 1/1 असंदीणे (असंदीण) 1/1 वि एवं (अ) = इसी प्रकार धम्मे (धम्म) 1/1 आरियपदेसिए [(आरिय)-(पदेसिअ) भूकृ 1/1 अनि]

85. दयं (दया) 2/1 लोगस्स (लोग) 6/1 जाणित्ता (जाण) संकृ पाईणं* (पाईण) 2/1 पडीणं (पडीण) 2/1 दाहिणं* (दाहिण) 2/1 उदीणं (उदीण) 2/1 आइक्खे (आइक्ख) विधि 3/1 सक विभए (विभअ) विधि 3/1 सक किट्टे (किट्ट) विधि 3/1 सक वेदवी (वेदवि) 1/1 वि

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

86. गामे (गाम) 7/1 अदुवा (अ) = अथवा रण्णे (रण्ण) 7/1 णेव (अ) = न ही धम्ममायाणह [(धम्मं) + (आयाणह)] धम्मं (धम्म) 2/1. आयाणह (आयाण) विधि 2/2 सक पवेदितं (पवेदितं) भूकृ 2/1 अनि माहणेण (माहण) 3/1 वि मतिमया (मतिमया) 3/1 अनि

87. अहासुतं (अ) = जैसा कि सुना है. वदिस्सामि (वद) भवि 1/1 सक जहा (अ) = प्रत्यक्ष उक्ति के आरंभ करते समय प्रयुक्त से (त) 1/1 सवि समणे (समण) 1/1 भगवं* (भगवन्त → भगवन्तो → भगवं) 1/1 उट्ठाय (उट्ठ) संकृ संखाए (संख) संकृ तंसि (त) 7/1 स हेमंते (हेमंत) 7/1 अहुणा (अ) = इस समय पव्वइए (पव्वइअ) भूकृ 1/1 अनि. रीइत्था (री) भू 3/1 सक

30782

* अर्ध मागधी में 'वाला' अर्थ में 'मन्त' प्रत्यय जोड़ा जाता है, 'म को विकल्प से व' होता है। विकल्प से 'त' का लोप और 'न्' का अनुस्वार हो जाता है (अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ 427)

88. अट्ठु (अ)=अव पोरिसिं[1] (पोरिसी)2/1 तिरियभित्तिं[2] [(तिरिय)-(भित्ति)2/1] चक्खुमासज्ज [(चक्खुं) + (आसज्ज)] चक्खुं (चक्खु)2/1 आसज्ज (अ)=रखकर या लगाकर अंतसो (अ)=आन्तरिक रूप से झाति[3] (झा) व 3/1 सक अह (अ) = तब चक्खुभीतसहिया [(चक्खु)-(भीत[4])-(सहिय)1/2] ते (त)1/2 सवि हंता[5] (अ)=यहाँ आओ हंता[6] (अ)=देखो बहवे (बहव) 2/2 वि कंदिंसु[7] (कंद) भू 3/2 सक

1 काल वाचक शब्दों के योग में द्वितीया होती है।

2 कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

3 भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमान काल का प्रयोग किया जा सकता है।

4 भीत=डर यहाँ 'भीत' नपुंसक लिंग संज्ञा है (विभिन्न कोश देखें)

5,6 'हंता' शब्द अव्यय है (विभिन्न कोश देखें)

7 'कंद' का कर्म के साथ अर्थ होगा, 'पुकारना'।

89. जे (अ)=पादपूर्ति केयिमे=के इमे के (अ)=कभी इमे (इम) 1/1 सवि अगारत्था (अगार-त्थ)5/1 वि मीसीभावं (मीसीभाव)2/1 पहाय (पहा) संकृ से (त)1/1 सवि झाति (झा) व 3/1 सक पुट्ठो (पुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि वि (अ)=भी णाभिभासिंसु [(ण)+(अभिभासिंसु)] ण (अ)=नहीं अभिभासिंसु (अभिभास) भू-3/1 सक गच्छति (गच्छ) व 3/1 सक णाइवत्तती [(ण)+(अइवत्तती)] ण (अ)=नहीं अइवत्तती* (अइवत्त) व 3/1 सक अंजू(अंजु)1/1 वि

* छंद-मात्रा की पूर्ति हेतु यहाँ ह्रस्व स्वर दीर्घ हुआ है (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 137, 138)

90. फरिसाइं (फरिस) 2/2 दुत्तितिक्खाइं (दुत्तितिक्ख) 2/2 वि अतिअच्च (अतिअच्च) संकृ अनि मुणी (मुणि) 1/1 परक्कममाणे

(परक्कम) वक्र 1/1 आघात–णट्ट–गीताइं [(आघात)–(णट्ट)–(गीत) 2/2] दंडजुद्धाइं* [(दंड)–जुद्ध) 2/2] मुट्ठिजुद्धाइं* [(मुट्ठि)–(जुद्ध) 2/2]

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3 : 137)

91. गढिए (गढिअ) 2/2 वि मिहु (अ)=परस्पर कहासु (कहा) 7/2 समयम्मि (समय) 7/1 णातसुते (णातसुत) 1/1 विसोगे (विसोग) 1/1 वि अदक्खु (अदक्खु) भू आर्ष एताइं (एत) 2/2 सवि सो (त) 1/1 सवि उरालाइं (उराल) 2/2 गच्छति (गच्छ) व 3/1 सक णायपुत्ते (णायपुत्त) 1/1 असरणाए* (असरण) 4/1

* मार्गभिन्न गत्यर्थक क्रियाओं के कर्म में द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

92. पुढविं (पुढवी) 2/1 च (अ)=और आउकायं (आउकाय) 2/1 तेजकायं (तेजकाय) 2/1 वायुकायं (वायुकाय) 2/1 पणगाइं (पणग) 2/2 बीयहरियाइं [(बीय)–(हरिय) 2/2 वि] तसकायं (तसकाय) 2/1 सव्वसो (अ)=पूर्णतया णच्चा (णच्चा) संकृ अनि

93. एताइं (एत) 1/2 सवि संति (अस) व 3/1 अक पडिलेहे* (पडिलेह) व 3/1 सक चित्तमंताइं (चित्तमंत) 1/2 वि से (त) 1/1 सवि अभिण्णाय (अभिण्णा) संकृ परिवज्जियाण (परिवज्ज) संकृ विहरित्था (विहर) भू 3/1 सक इति (अ)=इस प्रकार संखाए (संखा) संकृ महावीरे (महावीर) 1/1

* भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमान काल का प्रयोग किया जा सकता है।

94. मातण्णे (मातण्ण) 1/1 वि असणपाणस्स [(असण)-(पाण) 6/1] णाणुगिद्धे [(ण) + (अणुगिद्धे)] ण (अ)=नहीं. अणुगिद्धे (अणुगिद्ध) 1/1 वि रसेसु (रस) 7/2 अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि अच्छि (अच्छि) 2/1 पि (अ)=भी णो (अ)=नहीं पमज्जिया (पमज्ज) संकृ वि (अ)=भी य (अ)=और कंडुयए (कंडुय) व 3/1 सक मुणी (मुणि) 1/1 गातं (गात) 2/1

95. अप्पं (अ)=नहीं तिरियं (तिरिय) 2/1 पेहाए (पेह) संकृ पिट्ठओ (अ)=पीछे की ओर उप्पेहाए (उप्पेह) संकृ बुइए (बुइअ) भूकृ 7/1 अनि पडिभाणी (पडिभाणि) 1/1 वि पथपेही [(पथ)-पेहि) 1/1 वि] चरे (चर) व 3/1 सक जतमाणे (जत) वकृ 1/1

96. आवेसण-सभा-पवासु [(आवेसण)-(सभा)-(पवा) 7/2] पणियसालासु (पणियसाल) 7/2 एगदा (अ)=कभी वासो (वास) 1/1 अदुवा (अ)=अथवा पलियट्ठाणेसु (पलियट्ठाण) 7/2 पलाल-पुंजेसु [(पलाल)-(पुंज) 7/2]

97. आगंतारे (आगंतार) 7/1 आरामागारे [(आराम) + (आगार)] [(आराम)-(आगार) 7/1] नगरे (नगर) 7/1 वि (अ)=भी एगदा (अ)=कभी वासो (वास) 1/1 सुसाणे (सुसाण) 7/1 सुण्णागारे [(सुण्ण) + (आगारे)] [(सुण्ण)-(आगार) 7/1] वा (अ)=तथा रुक्खमूले [(रुक्ख)-(मूल) 7/1] वि (अ)=भी

98. एतेहिं[1] (एत) 3/2 सवि मुणी (मुणि) 1/1 सयणेहिं[1] (सयण) 3/2 समणे (स-मण) 1/1 वि आसि[2] (अस) भू 3/1 अक पतेलस[3] (पतेलस) मूल शब्द 7/1 वि वासे (वास) 7/1 राइंदिवं• (क्रिविअ) =रात-दिन पि (अ)= ही जयमाणे (जय) वकृ 1/1 अप्पमत्ते (अप्पमत्त) 7/1 वि समाहित (समाहित) 7/1 वि झाती* (झा) व 3/1 सक

1 कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

2 आसी अथवा आसि, सभी–पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम में आता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 749)

3 किसी भी कारक के लिए मूल शब्द (संज्ञा) काम में लाया जाता है। (मेरे विचार से यह विषय विशेषण पर भी लागू किया जा सकता है) (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

• राइंदिव–यह नपुंसक लिंग है। (Eng. Dictionary, Monier williams). इससे क्रिया-विशेषण अव्यय बनाया जा सकता है (राइंदिवं)

* छंद की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 137, 138)

99. णिद्दं (णिद्द) 2/1 पि (अ)=कभी भी णो (अ)=नहीं पगामाए (पगाम) 4/1 सेवइ (सेव) व 3/1 सक या=जा=जाव (अ)= ठीक उसी समय भगवं* (भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1 उट्ठाए (उट्ठ) संकृ जग्गावतीय [(जग्गावति)+(इय)] जग्गावति (जग्ग→प्रेरक जग्गाव) व 3/1 सक इय (अ)=और अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 ईसिं (अ)=थोड़ा स साईय [(साई)+(इय)] साई (साइ) 1/1 वि इय (अ)=और य (अ)=और अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि

* देखे सूत्र 87

100. संबुज्झमाणे (संबुज्झ) वकृ 1/1 पुणरवि (अ)=फिर आसिसु (आस) भू 3/1 अक भगवं* (भगवं) 1/1 उट्ठाए (उट्ठ) संकृ णिक्खम्म (णिक्खम्म) संकृ अनि एगया (अ)=कभी कभी राओ (अ)=रात में बहिं (अ)=बाहर चक्कमिया• (चक्कम) संकृ मुहुत्तागं (मुहुत्ताग) 2/1

• देखे सूत्र 87

* समय के शब्दों में द्वितीया होती है।

* पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 834.

101. सयणेहिं* (सयण)3/2 तस्सुवसग्गा [(तस्स) + (उवसग्गा)] तस्स (त) 4/1 स. उवसग्गा (उवसग्ग) 1/2 भीमा (भीम) 1/2 वि आसी (अस) भू 3/2 अक अणेगरूवा (अणेगरूव) 1/2 वि य (अ) =भी. संसप्पगा (संसप्पग) 1/2 वि य (अ)=भी जे (ज) 1/2 सवि पाणा (पाण) 1/2 अदुवा (अ)=और पक्खिणो (पक्खि)1/2 उवचरंति (उवचर) व 3/2 सक

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

• आसी अथवा आसि सभी पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम आता है। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ 749)

102. इहलोइयाइं (इहलोइय) 2/2 वि परलोइयाइं (परलोइय) 2/2 वि भीमाइं (भीम) 2/2 वि अणेगरूवाइं (अणेगरूव) 2/2 वि अवि(अ) =और सुब्भिदुब्भिगंधाइं* [(सुब्भि) वि-दुब्भि) वि-(गंध) 2/2] सद्दाइं* (सद्द) 2/2 अणेगरूवाइं (अणेगरूव) 2/2 वि

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

103. अधियासए (अधियास) व 3/1 सक सया (अ)=सदा समिते (समित) 1/1 वि फासाइं (फास) 2/2 विरूवरूवाइं (विरूवरूव) 2/2 वि अरतिं (अरति) 2/1 वि रतिं (रति) 2/1 वि अभिभूय (अभि-भू) संकृ रीयति* (री) व 3/1 सक माहणे (माहण) 1/1 वि अबहुवादी [(अ-बहु) वि-(वादि) 1/1 वि]

* अकारांत धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से अ या य जोड़ने के पश्चात् विभक्ति चिन्ह जोड़ा जाता है।

104. लाढेहिं* (लाढ) 3/2 तस्सुवसग्गा [(तस्स) + (उवसग्ग)] तस्स (त) 4/1 स. उवसग्गा (उवसग्ग) 2/2 बहवे (बहव) 2/2 वि जाणवया (जाणवय) 1/2 लूसिंसु (लूस) भू 3/2 सक अह (अ) = उसी तरह लूहदेसिए [(लूह)-(देसिअ) 1/1 वि] भत्ते (भत्त) भूकृ 1/1 अनि कुक्कुरा (कुक्कुर) 1/2 तत्थ (अ) = वहाँ पर हिंसिसु (हिंस) भू 3/2 सक णिवतिंसु (णिवत) भू 3/2 सक

* देशों के नाम प्राय: बहुवचन में होते हैं।

105. अप्पे (अप्प) 1/1 वि जणे (जण) 1/1 णिवारेति (णिवार) व 3/1 सक लूसणए (लूसणअ) 2/2 वि स्वार्थिक 'अ' सुणए (सुणअ) 2/2 डसमाणे (डसमाण) 2/2 छुच्छुकरेंति (छुच्छुकर) व 3/2 सक आहंसु (आह) भू 3/2 सक समणं* (समण) 2/1 कुक्कुरा (कुक्कुर) 2/2 दसंतु• (दस) विधि 3/2 अक त्ति (अ) = जिससे

* 'पीछे' के योग में द्वितीया होती है।

• दस = Te become exhausted (Eng. Dictionary by Monier Williams, P. 473 Col. I) तथा सम्मान प्रदर्शन करने में बहुवचन का प्रयोग हुआ है।

106. हत-पुव्वो (हतपुव्व) 1/1 वि तत्थ (अ) = वहाँ डंडेण (डंड) 3/1 अदुवा (अ) = अथवा मुट्ठिणा (मुट्ठि) 3/1 अदु (अ) = अथवा फलेणं (फल) 3/1 लेलुणा (लेलु) 3/1 कवालेणं (कवाल) 3/1 हंता (अ) = आओ हंता (अ) = देखो बहवे (बहव) 2/2 वि कंदिसु (कंद) भू 3/2 सक

107, सूरो (सूर) 1/1 वि संगामसीसे [(संगाम)-(सीस) 7/1] वा (अ) = जैसे संवुडे (संवुड) भूकृ 1/1 अनि तत्थ (अ) = वहाँ से (त) 1/1 सवि महावीरे (महावीर) 1/1 पडिसेवमाणो (पडिसेव)

वक्र 1/1 फरुसाइं (फरुस) 2/2 वि अचले (अचल) 1/1 वि भगवं (भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1 रीयित्था (री)• भू 3/1 सक

• अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से 'अ' या 'य' जोड़ने के पश्चात् विभक्ति चिन्ह जोड़ा जाता है।

108. अवि (अ)=और साहिए* (साहिअ) 2/2 वि दुवे* (दुअ) 2/2 वि मासे* (मास) 2/2 छप्पि[(छ)+(अपि)] छ (छ) 1/2. अपि (अ)=भी अदुवा (अ)=अथवा अपिवित्था (अपिव) भू 3/1 सक राओवरातं [(राअ)+(उवरातं)] [(राअ)—(उवरात) 2/1] अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि अण्णगिलायमेगता [(अण्ण)+(गिलायं)+(एगता)] [(अण्ण)—गिलाय) 2/1] एगता (अ)= कभी कभी भुंजे (भुंज) व 3/1 सक

* कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137) और समय बोधक शब्दों में सप्तमी होती है।

109. छट्ठेण* (छट्ठ) 3/1 एगया (अ)=कभी भुंजे (भुंज) व 3/1 सक अदुवा (अ)=अथवा अट्ठमेण* (अट्ठम) 3/1 दसमेण* (दसम) 3/1 दुवालसमेण* (दुवालसम) 3/1 एगदा (अ)=कभी पेहमाणे (पेह) वक्र 1/1 समाहिं (समाहि) 2/1 अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि

* कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान में तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–136) यहाँ 'बाद में' अर्थ लुप्त है, तथा 'बाद में' अर्थ के योग में पंचमी होती है।

110. णच्चाण* (णा) संक्र से (त) 1/1 सवि महावीरे (महावीर) 1/1 णो (अ)=नहीं वि (अ)=भी य(अ)=बिल्कुल पावगं (पावग) 2/1 सयमकासी [(सयं)+(अकासी)] सयं (अ)=स्वयं. अकासी

(अकासी) भू 3/1 सक अण्णेहिं (अण्ण) 3/2 वि वि (अ)=भी ण (अ)=नहीं कारित्था (कर→कार) भू 3/1 सक कीरंतं (कीरंत) वकृ कर्म 2/1 अनि पि (अ)=भी णाणुजाणित्था [(ण) + (अणुजाणित्था)] ण (अ)=नहीं अणुजाणित्था (अणुजाण) भू 3/1 सक

* पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 830

111. गामं (गाम) 2/1 पविस्स (पविस्स) संकृ अनि णगरं (णगर) 2/1 वा (अ)=या घासमेसे [(घासं) + (एसे)] घासं (घास) 2/1 एसे (एस) व 3/1 सक कडं (कड) भूकृ 2/1 अनि परट्ठाए (परट्ठा) 4/1 सुविसुद्धमेसिया [(सुविसुद्धं) + (एसिया)] सुविसुद्धं (सुविसुद्ध) 2/1 वि एसिया (एस) संकृ भगवं (भगवं) 1/1 आयतजोगताए [(आयत) वि-(जोगता) 3/1] सेवित्था (सेव) भू 3/1 सक

• 'गमन' अर्थ के साथ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।
पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण; पृष्ठ, 834

112. अकसायी (अकसायि) 1/1 वि विगतगेही [(विगत) भूकृअनि—(गेहि) 1/1] य (अ)=और सद्द-रुवेसुऽमुच्छिते [(सद्द) + (रुवेसु) + (अमुच्छिते)] [(सद्द)—(रुव) 7/2] अमुच्छिते (अमुच्छित) 1/1 वि झाती • (झा) व 3/1 सक छउमत्थे (छउमत्थ) 1/1 वि वि (अ)=भी विप्परक्कममाणे (विप्परक्कम) वकृ 1/1 ण (अ)= नहीं पमायं (पमाय) 2/1 सइं (अ)=एकबार पि (अ)=भी कुव्वित्था (कुव्व) भू 3/1 सक

• छंद की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।
[पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 137, 138]

113. सयमेव [(सयं) + (एव)] सयं (अ) = स्वयं. एव (अ) = ही अभिसमागम्म (अभिसमागम्म) संकृ अनि आयतजोगमायसोहीए [(आयत) + (जोगं) + (सोहिए)] [(आयत) वि — (जोग) 2/1] [(आय) — (सोहि) 3/1] अभिणिव्वुडे (अभिणिव्वुड) 1/1 वि अमाइल्ले (अमाइल्ल) 1/1 वि आवकहं (अ) = जीवन-पर्यन्त भगवं (भगवं) 1/1 समितासी [(समित) + (आसी)] समित* (समित) मूल शब्द 1/1 आसी (अस) भू 3/1 अक

* किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। [पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 517] [मेरे विचार से यह नियम विशेषण पर भी लागू किया जा सकता है]
आसी अथवा आसि सभी पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम आता है। [देखें गाथा 101]

आचारांग-चयनिका एवं आचारांग

सूत्र-क्रम

चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम
1	1	18	10	36	89
2	2	19	20	37	90
3	3	20	21	38	91
4	6	21	22	39	93
5	7	22	41	40	97
6	8	23	49	41	101
7	9	24	56	42	103
8	13	25	64	43	104
9	24	26	65	44	106
10	35	27	66	45	107
11	43	28	68	46	108
12	45	29	71	47	109
13	51	30	75	48	110
14	52	31	77	49	111
15	58	32	78	50	115
16	14 25 36	33	79	51	116
	44 52 59	34	80	52	117
17	62	35	83	53	118

आयारंग सुत्तं (आचारांग सूत्र), सम्पादक मुनि जम्बूविजय (श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई) 1976

चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम
54	119	74	159	94	273
55	120	75	162	95	274
56	121	76	167	96	278
57	123	77	169	97	279
58	124	78	170	98	280
59	125	79	171	99	281
60	126	80	172	100	282
61	127	81	176	101	283
62	129	82	180	102	285
63	131	83	185	103	286
64	132	84	189	104	295
65	133	85	196	105	296
66	134	86	202	106	302
67	141	87	254	107	305
68	144	88	258	108	312
69	149	89	260	109	313
70	152	90	262	110	314
71	153	91	263	111	315
72	155	92	265	112	321
73	157	93	266	113	322

सहायक पुस्तकें एवं कोश

1. आयारंग सुत्तं	:	सम्पादक : मुनि जम्बूविजय (श्री महावीर जैन विद्यालय, वम्वई)
2. आयारो	:	सम्पादक : मुनि नथमल (जैन विश्व भारती, लाडनूं)
3. आचारांग सूत्र	:	सम्पादक : मधुकर मुनि (श्री आगम प्रकाशन समिति, व्यावर, (राजस्थान)
4. समता दर्शन और व्यवहार	:	आचार्य श्री नानालालजी महाराज (श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ, वीकानेर)
5. जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा	:	देवेन्द्र मुनि (तारक गुरु ग्रन्थमाला, उदयपुर)
6. हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण भाग 1–2	:	व्याख्याता श्री प्यारचंदजी महाराज (श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाड़ी वाजार, व्यावर, (राजस्थान)
7. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	:	डा. आर. पिशल (विहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना)

8. अभिनव प्राकृत व्याकरण : डा. नेमिचन्द्र शास्त्री
(तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

9. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा. नेमिचन्द्र शास्त्री
(तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

10. प्राकृत मार्गोपदेशिका : पं. बेचरदास जीवराज दोशी
(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

11. संस्कृत निबन्ध-दर्शिका : वामन शिवराम आप्टे
(रामनारायण वेनीमाधव, इलाहाबाद)

12. प्रौढ़–रचनानुवाद कौमुदी : डा. कपिलदेव द्विवेदी
(विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी)

13. पाइअ-सद्द-महण्णवो : पं. हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ
(प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी)

14. संस्कृत हिन्दी–कोश : वामन शिवराम आप्टे
(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

15: Sanskrta-English Dictionary : M. Monier Williams
(Munshiram Manoharlal, New Delhi)

16. बृहत् हिन्दी कोश : सम्पादक : कालिका प्रसाद आदि
(ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस)

□ □ □

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
6	5	1	भाणण	माणण
12	12	2	विप्परिणाम्	विप्परिणाम
30	41	1	स	से
48	74	2	दुल्लभं :	दुल्लभं ।
54	82	1	वियाहृता	वियाहिता
55	82	1	अन्ध	अन्धे
64	105	2	छुच्छुक्कारेंति	छुच्छुकारेंति
		3	छुच्छुकरेंति	छुच्छुक्करेंति
73	10	1	व्याकरणिका	व्याकरणिक

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर

अद्यावधि प्रकाशित ग्रन्थ

1.	कल्पसूत्र सचित्र	सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक : महोपाध्याय विनयसागर, अंग्रेजी अनुवादन : डॉ० मुकुन्द लाठ	200-00 अप्राप्त
2.	राजस्थान का जैन साहित्य		30-00
3.	प्राकृत स्वयं शिक्षक	लेखक—डॉ० प्रेम सुमन जैन	15-00
4.	आगम तीर्थ	अनु० डॉ० हरिराम आचार्य	10-00
5.	स्मरण कला	(पं० धीरजलाल टो० शाह लिखित गुजराती पुस्तक का हिन्दी अनुवाद) अनु० मोहन मुनि शार्दूल	15-00
6.	जैनागम दिग्दर्शन	(45 जैनागमों का संक्षिप्त परिचय) सजिल्द ले० डॉ० मुनि नगराजजी सामान्य	20-00 16-00
7.	जैन कहानियाँ	ले० उपाध्याय महेन्द्र मुनि	4-00
8.	जाति स्मरण ज्ञान	ले० उपाध्याय महेन्द्र मुनि	3-00

9.	हाफ ए टैल (अर्धकथानक)	(कवि बनारसीदास रचित स्वात्म-अर्धकथानक का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद, सम्पादक एवं अनुवादक : डॉ० मुकुन्द लाठ	150-00
10.	गणधरवाद	(दलसुखभाई मालवणिया लिखित गुजराती गणधरवाद का हिन्दी अनुवाद) अनु० प्रो० पृथ्वीराज जैन सम्पादक—महोपाध्याय विनयसागर	50-00
11.	जैन इन्सक्रिप्सन्स ऑफ राजस्थान	ले० रामवल्लभ सोमानी	70-00
12.	एग्जेक्ट सायन्स फ्रोम जैन सोर्सेज पार्ट I, बेसिक मेथेमेटिक्स	ले० प्रो० लक्ष्मीचन्द जैन	15-00
13.	प्राकृत काव्य मञ्जरी	ले० डॉ० प्रेम सुमन जैन	15-00
14.	महावीर का जीवन सन्देश : युग के सन्दर्भ में	आचार्य काका कालेलकर	20-00
15.	जैन पोलिटिकल थोट	डॉ० जी० सी० पाण्डे	25-00
16.	स्टडीज् ऑफ जैनिज्म	डॉ० टी० जी० कलघटगी	35-00
17.	जैन, बौद्ध और गीता का साधना मार्ग	डॉ० सागरमल जैन	20-00
18.	जैन, बौद्ध और गीता का समाज दर्शन	डॉ० सागरमल जैन	16-00

19.	जैन, बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग-1	डॉ० सागरमल जैन	70-00
20.	जैन, बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग-2	डॉ० सागरमल जैन	70-00
21.	जैन, बौद्ध और गीता का कर्म-सिद्धान्त	डॉ० सागरमल जैन	14-00
22.	हेम प्राकृत व्याकरण शिक्षक खण्ड-1	डॉ० उदयचन्द जैन	16-00
23.	आचारांग-चयनिका	डॉ० कमलचन्द सोगाणी	12-00
24.	वाक्पतिराज की लोकानुभूति	डॉ० कमलचन्द सोगाणी	12-00

---

1. एक हजार रुपये से अधिक प्रकाशन खरीदने पर 40% कमीशन और संस्थान के प्रकाशनों का पूरा सेट खरीदने पर 30% दिया जाता है।

2. डाक-व्यय एवं पैकिंग व्यय पृथक् से होगा।

प्राप्ति स्थान :

राजस्थान प्राकृत भारती संस्थान,
3826, यति श्यामलालजी का उपासरा
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जयपुर-3
पिन कोड नम्बर-302 003